ब्राह्मणों की उत्पत्ति

जैनसमाजका विश्वास है कि, जब भोगभूमि नहीं रही और कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ, तब भगवान् आदिनाथने उस समयके सभी मनुष्योंको क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंमें विभाजित कर दिया था। इसके बाद भरतमहाराजने अपनी दिग्विजययात्राके पश्चात् इन्हीं तीनों वर्णों के लोगोंमेंसे कुछ धर्मात्माओंको छांटा और उन्हें ब्राह्मण करार दिया। तबसे चौथा वर्ण भी हो गया। इसके पहले न तो ब्राह्मण वर्ण ही था और न कोई ब्राह्मण ही था। इसीके अनुसार हमारे भाइयोंकी यह भी श्रद्धा है कि, इस समय जितने भी वेदपाठी ब्राह्मण मौजूद हैं, वे सब भरतमहाराजके बनाये हुए ब्राह्मणों की ही सन्तानमें से हैं जो चौथे काल में तो जैनधर्म के अनुयायी थे, पर पीछे पंचमकालमें श्रद्धाभ्रष्ट होकर जैनधर्मके द्वेषी बन गये हैं। परन्तु आदिपुराण के ३८ वें से लेकर ४२ वें तक पांच पर्वों का स्वाध्याय करने से यह विश्वास ठीक नहीं मालूम होता है और एक बहुत ही विलक्षण बात का पता लगता है। यह लेख उसी विलक्षणता को प्रकट करने के लिये लिखा जाता है। पाठकों को चाहिये कि, वे इसे खूब एकाग्र होकर पढ़ें॥

जब भरत महाराज ब्राह्मण वर्ण निर्माण करचुके थे, तब उन्होंने अपने दरबारमें आये हुए समस्त राजाओं को एक लम्बाचौड़ा उपदेश दिया था। उस का अभिप्राय यह है कि—"जो अक्षर म्लेच्छ देशमें रहते हों, राजाओं को चाहिये कि उन पर सामान्य किसानों के समान कर लगावें। जो वेदों के द्वारा अपनी आजीविका करते हैं और अधर्मरूप अक्षरों को सुना सुनाकर लोगों को ठगा करते हैं वे अक्षरम्लेच्छ कहलाते हैं। पापसूत्रोंसे जीविका करने वाले अक्षरम्लेच्छ हैं। क्योंकि वे अपने अज्ञानके बलसे अक्षरोंसे उत्पन्न हुए अभिमानको धारण करते हैं। हिंसामें प्रेम मानना, मांस खानेमें प्रेम मानना, जबर्दस्ती दूसरोंका धन हरण करना और भ्रष्ट होना यही म्लेच्छों का आचरण है और ये ही सब आचरण इन में मौजूद हैं। ये अधम द्विज (ब्राह्मण) अपनी जातिके अभिमानसे हिंसा करने और मांस खाने आदिको पुष्ट करने वाले वेद शास्त्रके अर्थको बहुत कुछ मानते हैं। अतः इनको सामान्य प्रजाके ही समान मानना चाहिये, अथवा सामान्य प्रजा से भी कुछ निकृष्ट मानना चाहिये। ये लोग मानने के योग्य नहीं हैं, किन्तु वे ही द्विज (ब्राह्मण) मानने योग्य हैं जो अरहन्तदेव के सेवक हैं। यदि ये अक्षरम्लेच्छ यह कहने लगें कि लोगों को संसार से पार करने वाले हम ही हैं हम ही देव ब्राह्मण हैं और सब लोग हम ही को मानते हैं, इस वास्ते हम राजा को अपने फसल का कुछ भी हिस्सा नहीं देंगे, तो उन से पूछना चाहिये कि अन्य वर्णों से तुममें क्या विशेषता है और क्यों है?

जाति मात्रसे तो कोई बड़प्पन हो नहीं सकता, रहे गुण, सो उनका तुममें बड़प्पन हो नहीं सकता, रहे गुण, सो उनका तुममें बड़प्पन है नहीं, क्योंकि तुम नाम के ही ब्राह्मण हो। गुणोंमें तो वे ही बड़े हैं, जो व्रतोंको धारण करने वाले जैन ब्राह्मण हैं। तुम लोग व्रत रहित, नमस्कार करने के अयोग्य, निर्लज्ज, पशुओं की हिंसा करने वाले म्लेच्छोंके आचरणमें तत्पर हो, इस लिये तुम किसी तरह भी धार्मिक द्विज (ब्राह्मण) नहीं हो। राजाओंको उचित है कि, वे इन अक्षर म्लेच्छों से साधारण प्रजाके ही समान अनाजका भाग लेकर इन को सबके समान मानें। ज्यादा कहनेकी जरूरत नहीं है। राजाओं को उत्तम जैन द्विजों (ब्राह्मणों) के सिवाय और किसीको भी पूज्य नहीं मानना चाहिये।,, —पर्व ४२॥

ये केचिच्चाक्षरम्लेच्छाः स्वदेशे प्रचरिष्णवः। तेऽपि कर्षकसामान्यं कर्त्तव्याः करदा नृपैः॥ १८१॥
तान्प्राहुरक्षरम्लेच्छा येऽमी वेदोपजीविनः। अधर्माक्षरसम्पाठैर्लोकव्यामोहकारिणः॥ १८२॥
यतोऽक्षरकृतं गर्वमविद्यावलतस्तके। वहंत्यतोऽक्षरम्लेच्छाः पापसूत्रोपजीविनः॥ १८३॥
म्लेच्छाचारो हि हिंसायां रतिर्मांसाशनेऽपि च। बलात्परस्वहरणं निद्‌र्धूतत्वमिति स्मृतम्॥ १८४॥
सोऽस्त्यमीषां च यद्वेदशास्त्रार्थमधमद्विजाः। तादृशं बहु मन्यन्ते जातिवादावलेपतः॥ १८५॥
प्रजासामान्यतैवैषां मता वा स्यान्निष्कृष्टता, ततो न मान्यताऽस्त्येषां द्विजा मान्याः स्युरार्हताः १८६
वयं निस्तारका देवब्राह्मणा लोकसम्मताः। धान्यभागमतो राज्ञे न दद्म इति चेन्मतम्॥ १८७॥
वैशिष्ट्यं किं कृतं शेषवर्णेभ्यो भवतामिह। न जातिमात्राद्वैशिष्ठ्यं जातिभेदाप्रतीतितः॥१८८॥
गुणतोऽपि न वैशिष्ट्यमस्ति वो नामधारकाः। व्रतिनो ब्राह्मणा जैना ये त एव गुणाधिकाः॥१८९।
निर्वृता निर्नमस्कारा निर्घृणाः पशुघातिनः। म्लेच्छाचारपरा यूयं न स्थाने धार्मिका द्विजाः १९०
तस्मादन्ते कुरु म्लेच्छा इव तेऽमी महीभुजां! प्रजासामान्यधान्यांशदानाद्यैरविशेषिताः॥ १९१॥
किमत्र बहुनोक्तेन जैनान्मुक्त्वा द्विजोत्तमान्, तान्ये मान्या नरेन्द्राणां प्रजासामान्यजीविकाः १९२

उपर्युक्त श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि, जिन जैनी राजाओं को यह उपदेश दिया गया है उनके ही राज्यमें उस समय ये वेदपाठी ब्राह्मण रहते थे, जो वेद पढ़नेके द्वारा ही अन्य लोगों से अपनी जीविका प्राप्त करते थे, और ये लोग ऐसे नहीं थे, जिन्होंने उसी समय कोई नवीन पन्थ खड़ा करके अपनेको पुजवाना शुरू करदिया हो, किन्तु ये लोग अनेक पीढ़ियों से माने जा रहे थे। तब ही तो इनको अपनी जातिका अभिमान था, और उनका यह अभिमान उस समय ऐसा प्रभावशाली हो रहा था कि, जैन राजा भी उन से कर नहीं लेते थे। तब ही तो भरत महाराज को यह जरूरत हुई कि वे जैनी राजाओंको भड़कावें कि इनसे क्यों कर नहीं लिया जाता है और समझावें कि ये लोग पूज्य नहीं हैं, किन्तु अन्य प्रजाके समान हैं, इस कारण अन्यप्रजाके समान इनसे भी कर लेना चाहिये। इतना ही नहीं, किन्तु इन वेदपाठी ब्राह्मणोंका प्रभाव तो उस समय इतना अधिक था कि, राजाओंको उपदेश देते समय भरतमहाराजको भी यह भय उत्पन्न हुआ और इस अपने भयको उन राजाओंके प्रति प्रकट भी कर देना पड़ा कि जब इन ब्राह्मणोंसे अन्य प्रजाके समान कर मांगा जावेगा तो ये लोग अपने

पूज्यपने के घमण्ड में कर देने से साफ इनकार करदेंगे और स्पष्ट शब्दोंमें कहेंगे कि, लोगों को संसार से पार करने वाले हम देवब्राह्मण हैं, हमको सब लोग मानते हैं, इस कारण इस राजा को कुछ भी कर नहीं देंगे।

अंधी श्रद्धा से जो चाहे मान लिया जावे, परन्तु विचार करनेपर तो यह कथन किसी तरह भी भरत महाराजके समयके अनुकूल नहीं होता है। क्योंकि आदिपुराण के ही कथनके अनुसार वह कर्मभूमिका प्रारम्भिक काल था; श्रीआदिनाथ भगवान् उस समय तक विद्यमान थे, जिन्होंने क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण बनाकर प्रजा को खेती, आदि काम सिखाये थे; अर्थात् वर्णोंमें विभाजित होने और खेती व्यापार आदि कर्म प्रारम्भ होनेको अभी एक पीढ़ी भी नहीं बीती। अभीसे ये ऐसे ब्राह्मण कहां से आ सकते थे जिनको अपनी जातिका घमंड हो, प्रजा के लोग भी जिनको संसार से पार करनेवाले मानते हों और राजा लोग भी जिनको अन्य प्रजासे उच्च समझकर उनसे अन्य प्रजाके समान कर न लेते हों और जिनका इतना भारी प्रभाव फैल रहा हो और इतना जबरदस्त ज़ोर बंध रहा हो कि, वे अपने पूज्यपने के घमंडमें राजा को भी कर देने से इनकार कर सकें।

भारतवर्ष एक ऐसे समय में से गुज़र चुका है, जब ब्राह्मणों ने जैन और बौद्धों से यहाँ तक घृणाकी थी कि उनकी छाया पड़जाने या कपड़ा भिड़ जानेपर भी वे सचैल स्नान करते थे और ऐसी २ आज्ञायें जारी करदी गई थीं कि यदि मस्त हाथीसे बचने के वास्ते जैनमन्दिर के अन्दर घुस जाने के सिवाय अन्य कोई भी उपाय न हो, तो भी जैनमन्दिरमें जानेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है। इसही द्वेषके कारण उस समय बौद्ध और जैनियोंका इतना विरोध किया गया था कि उनका जीना भी भारी होगया था। यहां तक कि बौद्ध धर्म तो इस देशसे बिलकुल नास्ति नहीं हुई, परन्तु वह भी न होने के ही बराबर हो गया।

ऐसे प्रबल द्वेषकी अवस्थामें बौद्धोंके समान जैनियोंका भी अस्तित्व न उठजानेका कारण इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि, सारे भारतमें हिन्दुओंकी प्रबलता होनेके समयमें भी दक्षिण में जैनी राजा होते रहे हैं जिनकी बदौलत उस समय जैनियों को दक्षिण में पनाह मिलती रही है और यहीं पर कुछ आचार्य उस समयकी परिस्थितके अनुसार जैनजातिके जीवित रहनेका उपाय बनाते रहे हैं। उनहीं उपायोंमेंसे एक उपाय जैन ब्राह्मणोंका निर्माण करना भी है जो ऐसे ही किसी समयमें दक्षिण देश में बनाये गये हैं और अब भी दक्षिण देशमें मौजूद हैं।

आदिपुराणके कर्ता श्रीजिनसेनाचार्यको हुये अनुमान एक हजार वर्ष बीते हैं। वे दक्षिण देशमें हुए हैं और अधिकतर कर्णाटक देशमें ही रहे हैं, जहां का राजा अमोघवर्ष जैनधर्मका परम श्रद्धालु, सहायक और जिनसेन स्वामीका परम भक्त था।

भरत महाराजका उपर्युक्त उपदेश आदिपुराणके कर्ता आचार्य महाराज और राजा

अमोघवर्षके समयसे अक्षर २ मिलता है जब कि ब्राह्मणों का सारे ही भारतमें पूरा २ जोर हो रहा था, वे सर्वथा पूजे जाते थे, न उनसे किसी प्रकारका कर लिया जाता था और न उनको दण्ड दिया जाता था; सारे भारतमें उनकी ऐसी मान्यता होने के कारण राजा अमोघवर्षके राज्य में भी उनका अन्य प्रजासे कुछ अधिक माना जाना और उनसे कर न लिया जाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है; परन्तु जैनी राजाके राज्य में भी जैनधर्मके परम शत्रु इन द्वेषी ब्राह्मणोंकी मान्यताका होना आचार्य महाराजको किसी तरह भी सहन नहीं हो सकता था, अतः उन्होंने जैनी राजाका सहारा पाकर इन ब्राह्मणोंको अक्षरम्लेच्छ और साधारण प्रजासे भी निकृष्ट सिद्ध करके उनकी मान्यता को तोड़नेके वास्ते अन्य प्रजा के समान उन पर भी कर लग जाने की कोशिश की, और स्वयं अमोघवर्ष राजाको समझाने के ध्यानमें भरत महाराजके द्वारा उस समयके राजाओंको ऐसा उपदेश देनेकी कथा इस कारण आदिपुराणमें वर्णन कर दी कि आगे होने वाले जैन राजाओं पर भी इस कथा का असर पड़ता रहे।

पर्व ४१में कथन किया गया है कि एक दिन भरत महाराजने कुछ स्वप्न देखे; जिन को उन्होंने अनिष्टकारी समझकर यह विचार किया कि इनका फल पञ्चमकाल में ही होगा; क्योंकि इस समय तो श्री आदिनाथ भगवान् स्वयं विद्यमान हैं। उनके होते हुये ऐसा उपद्रव कैसे सम्भव हो सकता है। इस सतयुग के बीत जानेपर जब पंचम कालमें पाप अधिक होगा, तब ही इन स्वप्नोंका फल होगा, चौथे कालके अन्तमें ही ये अनिष्टसूचक स्वप्न अपना फल दिखावेंगे। परन्तु भरत महाराजने विचार किया कि, इन स्वप्नोंका फल श्रीभगवान्‌से भी पूछ लेना चाहिये, इस कारण वे समवसरणमें गये और वहां उन्होंने श्रीमहाराजसे प्रार्थना की कि, मैंने जो द्विजोंकी सृष्टि की है सो यह कार्य अच्छा हुआ या बुरा, और मैंने जो स्वप्न देखे हैं उनका फल क्या है? इस पर श्री भगवान्‌ने जो उत्तर दिया है, उसका भावार्थ यह है कि—"तूने जो इन साधु समान गृहस्थ द्विजोंका पूजन किया है, सो जब तक चौथा काल रहेगा तबतक तो ये अपने योग्य आचरण को पालन करते रहेंगे; परन्तु जब कलयुग समीप आ जावेगा, तब ये लोग अपनी जातिके अभिमानके कारण अपने सदाचारसे भ्रष्ट होकर इस श्रेष्ठ मोक्ष-मार्ग के विरोधी बन जावेंगे और अपनी जातिके अभिमान से अपनेको सब लोगोंसे बड़ा समझकर धनकी इच्छा से मिथ्या शास्त्रों द्वारा सब लोगोंको मोहित करते रहेंगे आदर सत्कारके कारण अभिमान बढ़ जाने से ये लोग मिथ्या घमण्डसे उद्धत होकर अपने आप ही मिथ्या शास्त्रोंको बना २ कर लोगोंको ठगा करेंगे, इन लोगोंकी चेतना शक्ति पापकर्मसे मलिन हो जायगी, अतः ये धर्मके शत्रु हो जायंगे। ये अधर्मी लोग प्राणियों की हिंसा करने में तत्पर हो जायंगे, मधुमांस खानेको अच्छा समझेंगे और हिंसारूप धर्मकी घोषणा करेंगे। ये दुष्ट आशयवाले लोग अहिंसारूप धर्म में दोष दिखाकर हिंसामयधर्म को पुष्ट करेंगे, पाप के चिन्हस्वरूप जनेऊको धारण करनेवाले और जीवोंके मारने में तत्पर ये धूर्त लोग आगामी कालमें इस श्रेष्ठ मार्गके विरोधी

हो जायंगे। इस कारण ब्राह्मणवर्ण की स्थापना यद्यपि इस कालमें कुछ दोष उत्पन्न करनेवाली नहीं है, तो भी आगामी कालमें खोटे पाखण्डोंकी प्रवृत्ति करनेसे यह दोषकी बीजरूप है। परन्तु आगामी कालके लिये दोषकी बीजरूप होनेपर भी अब इसे मिटाना नहीं चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे धर्मरूप सृष्टिका उल्लंघन हो जायगा।" यथाः-

साधु वत्स कृतं साधु धार्मिकद्विजपूजनं। किंतु दोषानुषंगोऽत्र कोऽप्यस्ति स निशम्यतां ॥ ४५ ॥
आयुष्मन् भवता सृष्टा य एते गृहमेधिनः। ते तावदुचिताचारा यावत्कृतयुगस्थितिः ॥ ४६ ॥
ततः कलियुगेऽभ्यर्णे जातिवादावलेपतः। भ्रष्टाचाराः प्रपत्स्यंते सन्मार्गप्रत्यनीकतां ॥ ४७ ॥
तेऽमी जातिमदाविष्टा वयं लोकाधिकाइति। पुरा दुरागमैर्लोकं मोहयंति धनाशया ॥ ४८ ॥
सत्कारलाभसंवृद्धगर्वा मिथ्यामदोद्धताः। जनान् प्रतारयिष्यन्ति स्वयमुत्पाद्य दुःश्रुतीः ॥ ४९ ॥
त इमे कालपर्यन्ते विक्रियां प्राप्य दुर्दृशः। धर्मद्रुहो भविष्यंति पापोपहतचेतनाः ॥ ५० ॥
सत्त्वोपघातनिरता मधुमांसाशनप्रियाः। प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं घोषयिष्यंत्यधार्मिकाः ॥ ५१ ॥
अहिंसालक्षणं धर्मं दूषयित्वा दुराशयाः। चोदनालक्षणं धर्मं पोषयिष्यंत्यमी बत ॥ ५२ ॥
पापसूत्रधरा धूर्ताः प्राणिमारणतत्पराः। वर्त्स्यद्युगे प्रवर्त्स्यंति सन्मार्गपरिपंथिनः ॥ ५३ ॥
द्विजातिसर्जनं तस्मान्नाद्य यद्यपि दोषकृत्। स्याद्दोषबीजमायत्यां कुपाखंडप्रवर्तनात् ॥ ५४ ॥
इति कालांतरे दोषबीजमप्येतदंजसा। नाधुना परिहर्तव्यं धर्मसृष्ट्यनतिक्रमात् ॥ ५५ ॥ पर्व ४१

श्री भगवान् ने भरत महाराज के स्वप्नों का फल वर्णन करते हुए भी कहा था कि आदर सत्कार से जिसकी पूजा की गई है और जो नैवेद्य खा रहा है ऐसे कुत्ते के देखने का फल यह कि (पंचमकाल में) अव्रती द्विज भी गुणी पात्रोंके समान आदर सत्कार पावेंगे। यथाः—पर्व ४१ ॥

शुनोऽर्चितस्य सत्कारैश्चरुभोजनदर्शनात्। गुणवत्पात्रसत्कारमाप्स्यंत्यव्रतिनो द्विजाः ॥ १४ ॥

भरत महाराज ने राजाओं को उपदेश देते हुये जिन वेदपाठी ब्राह्मणों की निन्दा की है उनका मिलान पंचमकाल के उन ब्राह्मणों के साथ करने से जिनका वर्णन श्री भगवान् की उक्त भविष्यवाणी और स्वप्नफल में हुआ है दोनों का स्वरूप एक ही हो जाता है; अर्थात् यही मालूम होता है कि भगवान् ने ब्राह्मणोंका जो स्वरूप पंचमकाल में हो जाना वर्णन किया है मानो वे ही ब्राह्मण भरत महाराज का उपदेश होते समय चौथे काल के प्रारम्भ में ही मौजूद थे; या ऐसा मालूम होता है मानो भरत महाराज ही पंचम काल में अवतार लेकर इन पंचम कालके ब्राह्मणों पर कर लगानेका उपदेश पंचम काल के जैनी राजाओं को दे रहे हैं। अर्थात् यदि भरत महाराज के स्थान में जैन राजाओं को उपदेश देने वाले श्री जिनसेनाचार्य मान लिये जायँ तो सब बात ठीक बैठ जाती है।

भरत महाराज ने जो उपदेश अपने दरबार में आये हुए राजाओं को दिया था, उसके शेष भाग को पढ़ने से मालूम होता है कि उस समय मिथ्याती ब्राह्मणों का प्रभाव इससे भी अधिक था, जितना कि ऊपरके कथनसे मालूम हुआ है। यहां तक कि जैनी राजा भी उन पर श्रद्धा रखकर उनके दिये हुए 'शेषा; अर्थात् देवता पर

चढ़ाई हुई फूलमाला आदिकको या पूजनसे बची हुई सामग्रीको और उनके देवताओं के स्नानके पानीको ग्रहण करतेथे और उन ब्राह्मणोंके आगे सिर झुकातेथे उससमय यह प्रथा ऐसी प्रबल हो रही थी कि इस प्रथाका छुड़ाना भरतको भी मुश्किल जान पड़ता था। देखिये भरत महाराजने राजाओंको उपदेश देते समय क्या कहा है-

"क्षत्रियों को बड़ी कोशिश के साथ अपने वंशकी रक्षा करनी चाहिये और वह इस तरह पर हो सकती है कि, उनको अन्य मतवालों के धर्म में श्रद्धा रखकर उनके दिये हुए शेषा और स्नानोदक आदि कभी ग्रहण नहीं करने चाहिए। यदि कोई कहे कि उनके शेषाक्षत आदि ग्रहण करने में क्या दोष है, तो उसका उत्तर यह है कि इस में अपने महत्त्व का नाश होता है और अनेक अनिष्ट होते हैं, इस वास्ते उनका त्याग करना ही उचित है। दूसरों के सामने सिर झुकाने से अपने महत्त्व का नाश होता है, इसलिये उनकी शेषा आदि लेनेसे निकृष्टता ही होती है। कदाचित् कोई पाखंडी किसी प्रकार का द्वेष करके राजा के सिरपर 'विष-पुष्प' रखदे तो इस तरह भी राजा का नाश हो सकता है, या कोई राजा को मोहित करने के लिये राजा के सिर पर वशीकरण पुष्प रखदे तो वह राजा पागल के समान होकर उसके वश में हो जायगा। इसलिये राजा लोगों को अन्यमत वालों की शेषा आशीर्वाद, शान्तिवचन शान्तिमन्त्र और पुण्याहवाचन आदि सब का त्याग करदेना चाहिये। यदि वह त्याग नहीं करेगा तो नीच कुल वाला हो जायगा। जैनी राजा अरहन्त देवके चरणों की सेवा करने वाले होते हैं, इस वास्ते उनको अरहन्त देव की ही शेषा आदि ग्रहण करनी चाहिये जिससे उनके पापों का नाश हो। जो लोग जैनी नहीं हैं, उनको कोई अधिकार नहीं है कि वे क्षत्रियों को शेषा देवें। इस वास्ते राजा लोगों को अपने कुलकी रक्षा करनेके लिये सदा कोशिश करते रहना चाहिये। यदि वे ऐसा न करेंगे तो अन्यमती लोग झूठे पुराणोंका उपदेश सुनाकर उनको ठग लेंगे" मूल श्लोक ये हैं-

तैस्तु सर्वप्रयत्नेन कार्यं स्वान्वयरक्षणं। तत्पालनं कथं कार्यमिति चेत्तदनूच्यते ॥ १७ ॥
स्वयं महान्वयत्वेन महिम्नि क्षत्रियाः स्थिताः। धर्मास्थया न शेषादिग्राह्यं तैः परलिंगिनाम्॥१८॥
तच्छेषादिग्रहे दोष कश्चेन्माहात्म्यविच्युतिः। अपाया बहवश्चास्मिन्नतस्तत्परिवर्जनम् ॥ १९ ॥
माहात्म्यप्रच्युतिस्तावत्कृत्वान्यस्य शिरोनतिम्। ततः शेषाद्युपादाने स्यान्निकृष्टत्वमात्मनः॥२०॥
प्रद्विषन्परपाखंडी विषपुष्पाणि निक्षिपेत्। यद्यस्य मूर्ध्नि नन्वेवं स्यादपायो महीपतेः ॥ २१ ॥
वशीकरणपुष्पाणि निक्षिपेद्यदि मोहने। ततोऽयं मूकवद्वृत्तिरुपेयादन्यवश्यतां ॥ २२ ॥
तच्छेषाशीर्वचः शान्तिवचनाद्यन्यलिङ्गिनाम्। पार्थिवैः परिहर्तव्यं भवेन्न्यक्कुलतान्यथा ॥ २३ ॥
जैनास्तु पार्थिवास्तेषामर्हत्पादोपसेविनाम्। तच्छेषानुमतिर्न्याय्या ततः पापक्षयो भवेत् ॥ २४ ॥
ततः स्थितमिदं जैनान्मतादन्यमतस्थिताः। क्षत्रियाणां न शेषादिप्रदानेऽधिकृता इति ॥ २९ ॥
कुलानुपालने यत्नमतः कुर्वन्तु पार्थिवाः। अन्यथाऽन्यैः प्रतार्येरन्पुराणाभासदेशनात् ॥ ३० ॥पर्व ४२

इन श्लोकोंसे प्रकट है कि जैनी राजाओंको अन्य मतियोंके देवताका प्रसाद आदि लेनेसे रोकनेके लिए भरत महाराजने केवल धर्म उपदेश देनाही काफी नहीं समझाहै

किन्तु उन्हें बड़े २ भय दिखलानेकी भी जरूरत मालूम हुई है, जिससे स्पष्ट सिद्ध है। कि उस समय अन्यमतियोंका बहुतही ज्यादा प्रभाव और प्रचार था परन्तु, जिस समयका यह वर्णन है वह कर्मभूमिका प्रारम्भिक काल था जब कि श्रीआदिनाथ भगवान्ने सब लोगोंको खेती व्यापार आदि छह कर्म सिखाये थे और नगर ग्राम आदि बनाकर उन ही लोगों में से योग्य पुरुषोंको भिन्न भिन्न देशोंके राजा नियत किये थे, और फिर केवलज्ञान प्राप्त करके अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा जगत् भरमें सत्य धर्म का प्रकाश कर रहे थे और उनके बेटे भरतमहाराज छः खंड पृथिवी को जीतकर ३२ हजार मुकुटबद्ध राजाओं पर राज्य कर रहे थे। इस कारण भरत महाराजका उपर्युक्त उपदेश उस समयके अनुकूल किसी तरह भी नहीं हो सकता है। हां, श्रीजिनसेनाचार्यके समय से यह कथन अक्षर अक्षर मिल जाता है, जब कि सारे ही भारत में ब्राह्मणों का जोर हो रहा था और जब कि सारे भारतमें अमोघवर्ष जैसे एक ही दो जैनी राजा दिखाई देते थे और बाकी सब ही राजा ब्राह्मणोंके अनुयायी थे। ऐसे समयमें अमोघ वर्ष आदि राजाओंका भी इन ब्राह्मणोंके हाथसे उनके देवता का प्रसाद लेना, उनको प्रणाम करना, उनका आशीर्वाद आदि स्वीकार करना और देश भरमें इन ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा होनेके कारण इस प्रथाका त्याग कठिनतर होना बहुत ही सम्भव मालूम होता है, इससे, यही सिद्ध होता है कि यह सब उपदेश भरत महाराजने अपने समयके राजाओंको नहीं दिया, किन्तु जिनसेन महाराजनेही यह उपदेशअमोघवर्ष आदि जैन राजाओंको आदिपुराण में उक्त प्रसंग को अवतारणा करके दे डाला है।

आदिपुराणके विषयमें यह अनोखा विचार–कि इसमें श्री आदिनाथस्वामीके समय का कथन नहीं है, किन्तु उस समयके पुरुषोंके नाम से ग्रन्थकर्ताके ही समय का कथन है—केवल उपर्युक्त उपदेशसे ही सिद्ध नहीं होता है, किन्तु भरतमहाराज के द्वारा ब्राह्मण वर्ण की स्थापनाका कथन पढ़नेसे भी यही फल निकलता है। क्यों कि भरत महाराजने ब्राह्मण वर्ण को स्थापना करते समय अपने बनाये हुए ब्राह्मणों को जो उपदेश दिया था, उसमें सद्गृहस्थपनेकी क्रियाका उपदेश देते हुए कहा था कि सत्य, शौच, क्षम, दम आदि उत्तम आचरणों को धारण करने वाले सद्गृहस्थको को चाहिए कि वह अपने को देवब्राह्मण माने। यथाः— पर्व ३९

धर्म्यैराचरितैः सत्यशौचक्षान्तिदमादिभिः। देवब्राह्मणतां श्लाघ्यां स्वस्मिन्संभावयत्यसौ ॥ १०७॥

भरतमहाराज यह कह तो गये कि ऐसा ऐसा करने से वह जैनी अपने को देव ब्राह्मण माने, परन्तु उस ही समय उनको इस बात का भय भी उत्पन्न हो गया कि ब्राह्मण जाति के लोग अर्थात् वे लोग जो अनेक पीढ़ियों से ब्राह्मण माने जा रहे हैं और सब लोग जिनका आदर सत्कार करते हैं, इन हमारे नवीन बनाये हुए देवब्राह्मणों पर क्रोध करके नानाप्रकारके आक्षेप करेंगे इस कारण उन्होंने अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको इसके आगे निम्न लिखित शिक्षा दी। देखिये।—

"यदि अपनेको झूठ मूठ द्विज माननेवाला कोई पुरुष अपनी जातिके अहंकारमें इस नवीन देव ब्राह्मण को कहने लगे कि 'क्या तू आज ही देव बन गया है, क्या तू अमुक आदमी का बेटा नहीं है, और क्या तेरी माता अमुक की बेटी नहीं है, तब फिर तू आज किस कारण से ऊंची नाक करके मेरे जैसे द्विजों का आदरसत्कार किये बिना ही जा रहा है ? तेरी जाति वही है, जो पहिले थी, तेरा कुल वही है जो पहले था, और तू भी वही है, जो पहले था, तो भी तू आज अपनेको देवस्वरूप मानता है। देवता, अतिथि, पितृ और अग्निसम्बन्धी कार्य करनेमें तत्पर होकर भी तू गुरु-द्विज-देवोंको प्रणाम करने से विमुख है। जिनेन्द्रदेवकी दीक्षा धारण करनेसे अर्थात् जैनी बनने से तुझ का ऐसा कौनसा अतिशय प्राप्त होगया ? तू अब भी मनुष्य है और पृथिवीको पैरोंसे स्पर्श करता हुआ ही चलता है।" इस प्रकार अत्यन्त क्रोध करता हुआ यदि कोई द्विज उलाहना दे तो उसको इस प्रकार युक्ति से भरा हुआ उत्तर देना चाहिये। मूल श्लोक ये हैं:— पर्व ३९

अथ जातिमदावेशात्कश्चिदेनं द्विजब्रुवः। ब्रूयादेवं किमद्यैव देवभूयं गतो भवान् ॥ १०८ ॥
त्वमामुष्यायणः किन्न किं तेऽम्बाऽमुष्यपुत्रिका। येनैवमुन्नसोभूत्वा यास्यसत्कृत्यमद्विधान् ॥१०९॥
जातिः सैव कुलं तच्च सोऽसि योऽसिप्रगेतनः। तथापि देवतात्मानमात्मानं मन्यते भवान् ॥ ११०॥
देवताऽतिथिपित्रग्निकार्येष्वप्राकृतो भवान्। गुरुद्विजातिदेवानां प्रणामाच्च पराङ्मुखः ॥ १११ ॥
दीक्षां जैनीं प्रपन्नस्य जातः कोऽतिशयस्तव। यतोऽद्यापि मनुष्यस्त्वं पादचारी महीं स्पृशन् ॥११२॥
इत्युपारूढसंरम्भमुपालब्धः स केनचित्। ददात्युत्तरमित्यस्मै वचोभिर्युक्तिपेशलैः ॥ ११३ ॥

उपर्युक्त श्लोकोंके पढ़ने से साफ मालूम होता है कि, जिन द्विजोंके क्रोध करनेका भय भरत महराज को हुआ उनको इस बातका भारी घमण्ड था कि हम जाति के द्विज हैं, अर्थात् हम परम्परा से द्विजोंकी संतान में चले आते हैं और जैनी नवीन द्विज बनते हैं, और यह कि वे लोग यह भी श्रद्धा रखते थे कि कोई मनुष्य अपने गुणोंसे द्विज नहीं होसकता है, जो परम्परासे द्विजोंकी संतानमें चला आताहो वहही द्विज है तबही तो भरतमहाराजको यह खयाल हुआ कि वे मेरे बनाये हुये देव ब्राह्मणोंपर यह आक्षेप करेंगे कि अनेक गुण प्राप्त करने और अनेक उत्तम क्रियाओंके करने पर भी तू द्विज नहीं हो सकता है, क्योंकि तू अमुक माता पिताका बेटा है, अर्थात् द्विजकी सन्तान न होनेसे तू किसी प्रकार भी द्विज नहीं माना जा सकता। इन श्लोकोंसे यह भी स्पष्ट सिद्ध है कि, जिस समयका यह कथन है उस समय जातिका अभिमान करनेवाले इन मिथ्यात्वी द्विजों का इतना भारी प्रभाव था कि, यदि कोई इनको प्रणाम न करता था तो उसपर ये लोग क्रोध करके अनेक प्रकारके आक्षेप करते थे, अर्थात् सबसे प्रणाम करानेको वे अपना ऐसा जबर्दस्त अधिकार समझते थे जिसको कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता था, यहां तक कि उनके ख्यालमें ऊंचे दर्जेकी क्रिया करनेवाला जैनी भी उनको प्रणाम करनेसे इंकार नहीं कर सकता था।

परन्तु क्या यह दशा भरत महाराजके समयमें सम्भव हो सकती है? क्या कोई इस बात पर विश्वास कर सकता है कि, भरत महाराजके ब्राह्मण बनानेसे पहिले ही या ब्राह्मणवर्ण स्थापन करनेके दिन ही ऐसी ब्राह्मण जाति मौजूद थी जिसको अपनी जाति का घमण्ड हो और जिसका ऐसा भारी प्रभाव हो जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है। आदिपुराणके अन्य कथनोंसे तो यही सिद्ध होता है कि, उस समय ऐसे ब्राह्मणोंका विद्यमान होना तो दूर रहा, किन्तु उस समय उनका स्वप्नमें भी ख्याल नहीं हो सकता था। क्योंकि भरत महाराजको तो पञ्चमकालमें होनेवाले ऐसे ब्राह्मणों का स्वप्न भी इस कथनके बहुत वर्ष पीछे आया था और श्री भगवान् ने पञ्चमकाल में हो जानेवाले ऐसे ब्राह्मणों,का जो वर्णन अपनी भविष्यद्वाणी में किया था वह भी भरत महाराजके ब्राह्मण बनानेसे बहुत समय पीछे किया था,अर्थात् अभी तो भरत महराज को ऐसे ब्राह्मणोंका स्वप्न भी नहीं आया था। इस वास्ते इस बातको तो अन्धी श्रद्धा वाले भी माननेको तैयार नहीं हो सकते हैं कि भरतमहाराजके द्वारा ब्राह्मणवर्ण की स्थापना होते समय ब्राह्मण विद्यमान थे और ऐसे ब्राह्मण विद्यमान थे, जिनका कथन उक्त श्लोकोंके द्वारा भरत महाराज अपने बनायेहुये ब्राह्मणोंसे कर रहे हैं। हाँ, आदि, पुराणके कर्ता आचार्य जिनसेन महाराजके समयकी अवस्था बिलकुल इस कथन के अनुकूल पड़ती है; क्योंकि उस समय ब्राह्मणोंका ऐसा ही प्राबल्य था।

मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके द्वारा किये गये आक्षेपोंका वर्णन करके भरत महाराजने उसका जो कुछ उत्तर अपने बनाये हुए ब्रह्मणोंको सिखाया है, उससे भी इसही बात की पुष्टि होती है कि, यह कथन भरत महाराजके समयका नहीं होसकता है। क्योंकि इस उत्तरमें उन्होंने इस बातके सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि, मनुष्यकी उच्चता जन्मसे नहीं है, किन्तु कर्मसे है। अर्थात् उच्च कुल और उच्च जाति में जन्म लेनेसे मनुष्य बड़ा नहीं होता है, किन्तु दर्शन-ज्ञानचारित्रकी प्राप्तिसे ही वह उच्च होता है। अभिप्राय इसका यह है कि हे जातिका अभिमान करनेवाले ब्राह्मणो! यद्यपि तुम जाति में ऊंचे हो, परन्तु हम सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्तिसे ऊंचे हो गये हैं, इस वास्ते वास्तवमें हम ही ऊंचे हैं। उस उत्तर का अनुवाद यह है--

"हे अपने को द्विज माननेवाले! तू आज मेरा देवपने का जन्म सुन-श्रीजिनेन्द्रदेव ही मेरे पिता हैं, और ज्ञान ही मेरा निर्मल गर्भ है। उस गर्भमें अरहंतदेव सम्बन्धी तीन भिन्न २ शक्तियों को प्राप्त करके मैं संस्काररूपी जन्म से प्राप्त हुआ हूं। मैं बिना योनि के पैदा हुआ हूं, इस कारण देव हूं, मनुष्य नहीं हूं। मेरे समान जो कोई भी हों उन सबको तू देवब्राह्मण ही कह। मैं स्वयंभू भगवान के मुख से उत्पन्न हुआ हूं, इस वास्ते देवद्विज हूं, मेरे व्रतोंका शास्त्रोक्त चिन्ह यह मेरा पवित्र जनेऊ है। आप लोग द्विज नहीं है किन्तु गलेमें तागा डालकर श्रेष्ठ मोक्षमार्गमें तीक्ष्ण कांटे बनते हुए पाप रूप शास्त्रों के अनुसार चलने वाले केवल मलसे ही दूषित हैं। जीवों का जन्म दो प्रकार का है, एक शरीर जन्म और दूसरा संस्कार जन्म। इस ही प्रकार जैनशास्त्रों

में मरण भी दो प्रकारका कहा है। पहले शरीरके नष्ट होनेपर दूसरे भवमें दूसरे शरीर के प्राप्त होने को जीवोंका शरीर जन्म समझना चाहिये। इस ही प्रकार जिसे अपने आत्मा की प्राप्ति नहीं हुई है, उसको संस्कारों के निमित्तसे दूसरे जन्म की प्राप्ति का होना संस्कार जन्म है। इसी प्रकार आयु पूर्ण होनेपर शरीर छोड़ना शरीर मरण है और व्रतोंको धारण करके पापोंको छोड़ना संस्कार मरण है। जिस को ये संस्कार प्राप्त हुए हैं उसका मिथ्यादर्शनरूप पहली पर्याय से मरण ही हो जाता है। इन दोनों जन्मों में से यह संस्कार जन्म जो पाप से दूषित नहीं है गुरुकी आज्ञानुसार मुझको प्राप्त हुआ है, इस वास्ते मैं देवद्विज हूं।" मूल श्लोक ये हैं:—

श्रूयतां भो द्विजंमन्य त्वयाऽस्मद्दिव्यसंभवः। जिनो जनयिताऽस्माकं ज्ञानं गर्भोऽतिनिर्मलः ॥११४॥
तत्रार्हतीं त्रिधा भिन्नां शक्तिं त्रैगुण्यसंश्रितां। स्वसात्कृत्य समुद्भूता वयं संस्कारजन्मना ॥११५॥
अयोनिसंभवास्तेन देवा एव न मानुषाः। वयं वयमिवान्येऽपि सन्ति चेद्ब्रूहि तद्विधान् ॥११६॥
स्वायंभुवान्मुखाज्जातास्ततो देवद्विजा वयं। व्रतचिन्हं च नः सूत्रं पवित्रं सूत्रदर्शितं ॥ ११७ ॥
पापसूत्रानुगा यूयं न द्विजा सूत्रकंटकाः। सन्मार्गकंटकास्तीक्ष्णाः केवलं मलदूषिताः ॥ ११८ ॥
शरीरजन्म संस्कारजन्म चेति द्विधा मतं। जन्मांगिनां मृतिश्चैवं द्विधाम्नाता जिनागमे ॥ ११९ ॥
देहांतरपरिप्राप्तिः पूर्वदेहपरिक्षयात्। शरीरजन्म विज्ञेयं देहभाजां भवांतरे ॥ १२० ॥
तथा लब्धात्मलाभस्य पुनः संस्कारयोगतः। द्विजन्मतापरिप्राप्तिर्जन्मसंस्कारजं स्मृतं ॥ १२१ ॥
शरीरमरणं स्वायुरंते देहविसर्जनं। संस्कारमरणं प्राप्तव्रतत्यागःसमुज्झनं ॥ १२२ ॥
यतोऽयं लब्धसंस्कारो विजहाति प्रगेतनं। मिथ्यादर्शनपर्यायं ततस्तेन मृतो भवेत् ॥ १२३ ॥
तत्रसंस्कारजन्मेदमपापोपहतं परं। जात नो गुर्वनुज्ञानादतो देवद्विजा वयं ॥ १२४ ॥　पर्व ३९।

इन श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि भरत महराज के ब्राह्मणवर्ण स्थापन करते समय जो मिथ्यात्वी ब्राह्मण मौजूद थे, वे जनेऊ पहनते थे और अपने को ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ मानते थे। उन्हीं के मुकाबिले में भरत महाराज ने अपने बनाये हुये ब्राह्मणों को यह उत्तर सिखाया कि तुम भी यह कहो कि हमने जिनेन्द्र भगवान् के मुख से निकली हुई जिनवाणीको ग्रहण किया है, इस वास्ते हम भी श्री स्वयंभू भगवान्के मुखसे ही उत्पन्न हुए हैं और जिस प्रकार तुम जनेऊ पहने हुए हो उसी प्रकार हम भी पहने हुए हैं, और तुमको जो अपनी जातिका घमण्ड है वह मिथ्या है क्योंकि तुम अपने को परम्परा से ब्राह्मण की सन्तान सिद्ध करके शरीर जन्म का घमण्ड करते हो। शरीर अनेक दोषों से दूषित होता है, इस वास्ते शरीर का अर्थात् जाति का घमण्ड नहीं करना चाहिये। रत्नत्रय के ग्रहण का और व्रतों के पालने का जन्म जिसको संस्कार जन्म कहते हैं हमने प्राप्त करलिया है, इस कारण हमारे माता पिता कोई भी हों, किन्तु हम देवद्विज हैं।

उपर्युक्त सारा कथन भरत महाराज के समय से तो मिलान नहीं खाता है, किन्तु पंचमकाल और श्रीजिनसेनाचार्यके समयके बिलकुल अनुकूल है; जब कि जैनके विरोधी ब्राह्मणों का बड़ा भारी जोर था और जब कि वे जैनियों के साथ हदसे ज्यादा

द्वेष करते थे मालूम होता है कि, इस ही द्वेष की अग्नि से भड़क कर और अमोघवर्ष जैसे जैन राजा का आश्रय पाकर ही आचार्य महाराजने इन ब्राह्मणोंकी निन्दा की है और राजाओंको भी इनके विरुद्ध भड़कानेकी कोशिश की है, परन्तु ऐसी कोशिश करते हुए भी आचार्य महाराज के हृदयमें इन मिथ्यात्वी ब्राह्मणों की परम्परागत जातिका प्रभाव और जैनब्राह्मणोंकी नवीन उत्पत्तिका ख्याल बराबर बना रहा है, देखिये भरत महराज अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको पूर्वोक्त उत्तर सिखानेके पश्चात् क्या समझाते हैं-

"सच्ची क्रिया करनेवाले ब्राह्मणों के हृदय से जातिवाद का ख्याल दूर करने के लिये अर्थात् जैन ब्राह्मणोंके हृदयसे इस बातका संकोच हटाने के लिये कि हम नवीन ब्राह्मण बनते हैं और मिथ्यात्वी ब्राह्मण परम्परा से ब्राह्मण सन्तान में उत्पन्न होते हुए चले आते हैं, इस कारण जातिके ब्राह्मण हैं। मैं तुमको फिर समझाता हूं कि जो ब्रह्मा की सन्तान हो उसे ब्राह्मण कहते हैं और स्वयंभू भगवान् जिनेन्द्रदेव ब्रह्मा हैं। आत्मा के सम्यग्दर्शन आदि गुणोंके बढ़ानेवाले होनेके कारण वे जिनेन्द्रदेव आदि परम ब्रह्मा हैं और मुनीश्वर लोग यह मानते हैं कि परम ब्रह्म या केवल ज्ञान उनहीं के आधीन है, हिरण का चमड़ा रखने वाला जटा डाढ़ी आदि जिसके चिन्ह हैं जिसने काम के वश होकर गधे का मुंह बनाया और ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हुआ, वह ब्रह्मा नहीं हो सकता है। इस वास्ते जिन्होंने दिव्य मूर्त्ति वाले जिनेन्द्र देवके निर्मल ज्ञानरूपी गर्भसे जन्म लिया है वे ही द्विज है। व्रत मन्त्र आदि संस्कारों से जिन्होंने गौरव प्राप्त कर लिया है वे उत्तम द्विज वर्णान्तःपाती नहीं हो सकते हैं, अर्थात् किसी प्रकार वर्ण से गिरे हुए नहीं माने जा सकते हैं, किन्तु जो क्षमा शौच आदि गुणों के धारी हैं, सन्तोषी हैं, उत्तम और निर्दोष आचरण रूपी आभूषणों से भूषित हैं, वे ही सब वर्णों में उत्तम हैं और जो निंद्य आचरण करनेवाले हैं, पापरूप आरम्भ में सदा लगे रहते हैं और सदा पशुओं का घात किया करते हैं वे किसी तरह भी द्विज नहीं माने जा सकते हैं। हिंसामय धर्मको मानकर जो पशुओं का घात करते हैं और पाप शास्त्रोंसे आजीविका करते हैं, नहीं मालूम उनकी क्या दुर्गति होगी। जो अधर्मस्वरूप धर्मको मानते हैं मैं उनके सिवाय और किसी को कर्म चाण्डाल नहीं समझता हूं। जो निर्दय होकर पशुओं को मारते हैं वे पापरूप कार्यों के पण्डित हैं लुटेरे हैं, धर्मात्मा लोगोंसे अलग हैं और राजा लोगों के द्वारा दण्ड देने योग्य हैं। पशुओं की हिंसा करने के कारण जो राक्षसों से भी अधिक निर्दय हैं यदि ऐसे लोग ही ऊँचे माने जावेंगे तो दुःख के साथ कहना पड़ता है कि विचारे धार्मिक लोग व्यर्थ ही मारे गये। अपने को द्विज कहलाने वाले ये लोग पापाचरण करते हैं, इस वास्ते बुद्धिमान लोग इनको कृष्णवर्ग में गिनते हैं, अर्थात् इनको भी म्लेच्छ समझते हैं और जैनियों का आचरण निर्मल है इस वास्ते इनको शुक्लवर्ग में शामिल करते हैं अर्थात् इनको आर्य्य मानते हैं द्विजों की शुद्धि, श्रुति, स्मृति, पुराण, चरित्र, मन्त्र और क्रियाओं से और देवताओं का चिन्ह धारण करने और काम का नाश करने से होती है। जो अत्यन्त विशुद्धि वृत्ति को

धारण करते हैं, उनको शुक्लवर्गी मानना चाहिये और बाकी सब को शुद्धता वाह्य समझना चाहिये। उनकी शुद्धि और अशुद्धि न्याय अन्यायरूप प्रवृत्ति से जाननी चाहिये। दया से कोमल परिणामों का होना न्याय है और जीवों का मारना अन्याय है। इस कारण यह सिद्ध होगया कि, सब जीवों पर दया करने से विशुद्ध वृत्ति को धारण करने वाले जैनी लोग ही सब वर्णोंमें उत्तम हैं, और द्विज हैं। वे वर्णान्तपाती अर्थात् वर्णमें गिरे हुए नहीं हैं।,, मूल श्लोक ये हैं- पर्व ३९।

भूयोऽपि संप्रवक्ष्यामि ब्राम्हणान् सत्क्रियोचितान्। जातिवादावलेपस्य निरासार्थमतः परम् ॥१२७॥
ब्रम्हणोऽपत्यमित्येवं ब्राम्हणाः समुदाहृताः। ब्रम्हा स्वयंभूर्भगवान्परमेष्ठी जिनोत्तमः॥ १२७॥
स ह्यादि परम ब्रम्हा जिनेन्द्रो गुणबृंहणात्। परं ब्रम्हा यदायत्तमामनन्ति मुनीश्वराः॥ १२८॥
नैणाजिनधरो ब्रम्हा जटाकूर्चादिलक्षणः। यः कामगर्दभो भूत्वा प्रच्युतो ब्रम्हावर्चसात्॥ १२९॥
दिव्यमूर्तेर्जिनेन्द्रस्य ज्ञानगर्भादनाविलात्। समासादितजन्मानो द्विजन्मानस्ततो मताः॥१३०॥
वर्णान्तः पातिनो नैते मन्तव्या द्विजसत्तमाः। व्रतमन्त्रादिसंस्कारसमारोपितगौरवाः॥ १३१॥
वर्णोत्तमानिमान् विद्मः क्षान्तिशौचपरायणान्। सन्तुष्टान्प्राप्तवैशिष्ट्यानक्लिष्टाचारभूषणान्॥१३२॥
क्लिष्टाचाराः परे नैव ब्राम्हणा द्विजमानिनः। पापारम्भरताः शश्वदाहत्य पशुघातिनः॥ १३३॥
सर्वमेधमयं धर्ममभ्युपेत्य पशुघ्नताम्। का नाम गतिरेषां स्यात्पापशास्त्रोपजीविनाम्॥ १३४॥
चोदनालक्षणं धर्ममधर्मं प्रतिजानते। ये तेभ्यः कर्मचाण्डालान् पश्यामो नापरान् भुवि॥ १३५॥
पार्थिवैर्दण्डनीयाश्च लुण्टका पापपण्डिताः। तेऽमी धर्मजुषां बाह्या ये निघ्नन्त्यघृणाः पशून्॥१३६॥
पशुहत्यासमारम्भात्क्रव्याद्भ्योऽपि निष्कृपाः। यद्युच्छ्रुतिमुशंत्येते हन्तैवं धार्मिका हताः॥१३७॥
मलिनाचरिता ह्येते कृष्णवर्गे द्विजब्रुवाः। जैनास्तु निर्मलाचाराः शुक्लवर्गे मता बुधैः॥ १३८॥
श्रुतिस्मृतिपुराणवृत्तमन्त्रक्रियाश्रिता। देवतालिंगकामान्तकृता शुद्धिर्द्विजन्मनाम्॥ १३९॥
ये विशुद्धतरां वृत्तिं तत्कृतां समुपाश्रिताः। ते शुक्लवर्गे बोद्धव्याः शेषाः शुद्धेः बहिःकृताः॥ १४०॥
तच्छुद्ध्यशुद्धी बोद्धव्ये न्यायान्यायप्रवृत्तितः। न्यायोदयार्द्रवृत्तित्वमन्यायः प्राणिमारणम्॥१४१॥
विशुद्धवृत्तयस्तस्माज्जैना वर्णोत्तमा द्विजाः। वर्णान्तः पातिनो नैते जगन्मान्या इति स्थितम्॥१४२॥

उपर्युक्त श्लोकोंसे सिद्ध है कि भरतमहाराज के ब्राह्मण बनानेसे पहले से ब्राह्मण मौजूद थे और वे अपनेको ब्रह्मा की सन्तान बतलाते थे जैसा कि इस पंचम काल के ब्राह्मण बतलाते हैं और वे लोग ब्रह्माकी कथा को उस ही प्रकार मानते थे जिस प्रकार आज कल मानते हैं। तब ही तो भरत महाराज ने अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको समझाया कि ब्रह्मा वह नहीं है जिसको ये मिथ्यात्वी ब्राह्मण मानते हैं, किन्तु श्रीजिनेन्द्र देव ही ब्रह्मा हैं। भरतमहाराजको ब्राह्मणोंकी इस प्रसिद्धिको भी मानना पड़ा कि जो ब्रह्माकी सन्तान हो वह ही ब्राह्मण है। इसको पूर्ति उन्होंने इस तरह पर करदी कि जो श्रीजिनेन्द्रदेवकी वाणीको मानता है वह ही जिनेन्द्रदेव अर्थात् ब्रह्माकी सन्तान है और वह ही ब्राह्मण है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय भरतमहाराजके हृदय पर उन मिथ्यात्वी ब्राह्मणों के प्रभाव का इतना भारी असर पड़ा कि वे यह भी भूल गये कि हमने तो ब्राह्मणों का एक पृथक् ही वर्ण स्थापित किया है; किन्तु उनको इन

मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके मुकाबले में यही सिद्ध करते बन पड़ा कि सभी जैनी लोग ब्राह्मण हैं, क्योंकि सभी जैनी जिनेन्द्र देवकी वाणीको मानते हैं। जो जिनेन्द्रदेवकी वाणीको मानता है, वह ब्रह्माकी सन्तान है और जो ब्रह्माकी सन्तान है वह ब्राह्मण है, अर्थात् सब ही जैनी लोग ब्राह्मण हैं।

अपने बनाये हुए नवीन ब्राह्मणोंको पुराने ब्राह्मणोंके आक्षेपोंसे बचाने और पुराने ब्राह्मणोंकी जातिके घमण्ड को तोड़ने के लिये भरतमहाराज को यह भी सिद्ध करना पड़ा कि वर्ण या जाति जन्म से नहीं है, किन्तु कर्म से है। अर्थात् किसीको उच्च या नीच मानने के वास्ते यह नहीं देखना चाहिये कि उस के बाप दादा पड़दादा आदि कौन थे, किन्तु यह देखना चाहिये कि वह स्वयं कैसे कर्म करता है। यदि वह उत्तम कर्म करता है तो उत्तम है और नीच कर्म करता है तो नीच है। तब ही तो भरत महाराजने कहा है कि मनुष्यकी शुद्धि अशुद्धि हिंसा और अहिंसासे माननी चाहिये, अर्थात् जो हिंसा करता है उसका कुल और जाति कैसी ही उच्च हो, परन्तु वह नीच ही है और जो दया करता है उसका कुल और जाति कुछ ही हो, परन्तु वह उच्च ही है। इस ही सिद्धान्तसे भरत महाराज ने यह नतीजा निकाल दिया कि जो कोई भी मनुष्य जैनधर्मको धारण करके दया धर्मका पालन करता है वह ही उत्तम है और ये प्राचीन ब्राह्मण पशुघात करनेसे नीच हैं।

इन श्लोकों से यह भी मालूम होता है कि, भरत महाराज को इन पशुघाती ब्राह्मणोंकी मान्यता होनेका बड़ा भारी दुःख था और इन ब्राह्मणोंकी इस पापरूप प्रवृत्ति का दूर होना वे बहुत ही कठिन समझते थे, तब ही तो उन्होंने अपने इस दुःख को वर्णन करते हुए अपने चित्तकी अति प्रबल कषाय को यह कह शान्त किया है कि इन लोगोंको राजाओंके द्वारा दण्ड मिलना चाहिये।

परन्तु आदिपुराणके ही दूसरे कथनोंके अनुसार भरत महाराज के समय में और विशेष कर उनके द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापना होनेके दिनोंमें मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंका विद्यमान होना, उनका इतना भारी प्रभाव होना, और उनमें अपनी जाति का इतना भारी घमण्ड होना, किसी तरह भी सम्भव नहीं हो सकता है और न ये बातें जो उक्त श्लोकों में कहलाई गई हैं, किसी तरह ३२ हजार राजाओं के अधिपति भरत चक्रवर्तीके द्वारा कही जानेके योग्य जान पड़ती हैं।

उपर्युक्त श्लोकों में बार बार यह भी कहा गया है कि जैनी 'वर्णान्तः पाता', अर्थात् वर्णोंसे गिरे हुए नहीं हैं, जिससे सिद्ध है कि जिस समयका यह कथन है उस समय जैनी लोग सर्वसाधारणमें ऐसे ही माने जाते थे, अर्थात् उस समय अन्य मत का बड़ा भारी प्राबल्य था और जैनी लोग घृणाकी दृष्टि से देखे जाते थे; परन्तु यह अवस्था किसी तरह भी भरत महाराज के समय की नहीं हो सकती है, किन्तु यह सारा कथन आचार्य महाराजके ही समयके अनुकूल पड़ता है।

कुछ भी हो, अर्थात् चाहे यह कथन भरत महाराज के समय का हो और चाहे आचार्य महाराज के समयका, किन्तु इस में कोई सन्देह नहीं है कि आदि पुराण के कर्त्ता ने इन मिथ्यात्वी ब्राह्मणों का कथन करके भरत महाराज के द्वारा ब्राह्मण वर्ण स्थापन होनेकी बातको असत्य सिद्ध कर दिया और स्वयं ही यह स्वीकार कर लिया कि, भरत महाराज के ब्राह्मण बनाने के दिन भी ब्राह्मण मौजूद थे और ऐसे ब्राह्मण मौजूद थे, जिनको अपनी जातिका घमण्ड था और जिनके विषय में भरत महाराज को ब्राह्मण वर्ण स्थापन करने के दिन ही यह भय हो गया था कि वे हमारे बनाये हुए ब्राह्मणों पर क्रोध करेंगे।

इससे पहिले लेखमें सिद्ध किया गया है कि, ब्राह्मणवर्णकी स्थापनाके समय मिथ्यात्वी ब्राह्मण मौजूद थे, जिनका उस समय बड़ा भारी प्रभाव और प्रचार था और ब्राह्मण वर्ण स्थापन करने की कथा भरत महाराज के समय की नहीं, किन्तु उस समयकी है; जब कि हिन्दुस्तानमें ब्राह्मणोंका बड़ा भारी जोर था और वे जैनियोंसे अत्यन्त घृणा और द्वेष करतेथे। आदिपुराणमें वर्णित ब्राह्मणोंकी उत्पत्तिके शेष कथन को पढ़नेसे यह बात और भी ज्यादा दृढ़ हो जाती है और यह नतीजा निकल आता है कि पञ्चमकालमें ही किसी समय जैनियों ने किसी जैनी राजा का सहारा पाकर मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके प्रभावसे बचनेके वास्ते कुछ गृहस्थी जैनियोंको पूजना शुरू कर दिया और उनसे वे सब काम लेने लगे, जो ब्राह्मण लोग किया करते थे, जिससे होते होते उनकी एक जाति ही बन गई। मालूम होता है कि, जैन ब्राह्मणोंकी यह उत्पत्ति दक्षिण देशमें ही हुई है। क्योंकि जैन राजा भी वहीं हुये हैं और वहीं अब तक जैन ब्राह्मण मौजूद भी हैं, जो ब्राह्मणों की तरह ही जैन-यजमानोंके सब काम करते हैं। किन्तु यह नई सृष्टि जैनसिद्धान्तके विरुद्ध होनेके कारण जैनियोंमें सब जगह मान्य न हुई, अर्थात् दक्षिण देशके सिवाय अन्य कहीं भी इसका प्रचार न हो सका।

आदिपुराणमें अपने बनाये हुए जैन ब्राह्मणोंको उपदेश देते हुये भरतमहाराज ने उनके दस अधिकार बताये हैं। उसमें व्यवहारेशिता अधिकारको वर्णन करते हुये लिखा है कि,जैनागमका आश्रय लेनेवाले इन ब्राह्मणोंको प्रायश्चित्त देनेका भी अधिकार होना चाहिये। यदि उनको यह अधिकार न होगा तो वे न अपनी शुद्धि कर सकेंगे और न दूसरोंको ही शुद्ध कर सकेंगे। इस प्रकार अशुद्ध रहकर यदि वे गैरोंसे शुद्ध होने की इच्छा करेंगे तो कैसे काम चलेगा?:—पर्व ४०।

व्यवहारेशितां प्राहुः प्रायश्चित्तादिकर्मणि। स्वतन्त्रतां द्विजस्यास्य श्रितस्य परमां श्रुतिम्॥ १९२॥
तदभावे स्वमन्यांश्च न शोधयितुमर्हति। अशुद्धः परतः शुद्धिमभीप्सन्नकृतो भवेत्॥ १९३॥

इन श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि, जिस समय जैन-ब्राह्मण बनाये गये थे,उस समय अन्य मतके ब्राह्मण मौजूद थे जो प्रायश्चित्तादि दिया करते थे, किन्तु जैन ब्राह्मण बनानेवाला यह चाहता था कि जैन ब्राह्मणोंको भी प्रायश्चित्त देनेका अधिकार होजावे। इसही कारण वह जोर देता है कि,यदि जैनब्राह्मणोंको यह अधिकार न होगा तो वे भी

अपना प्रायश्चित्त अन्य मतियोंसेही कराया करेंगे और तब जैनब्राह्मण बनना व्यर्थही र-हेगा। इस कारण अन्यमतियोंके समान इनको भी प्रायश्चित्तका अधिकार मिलना चाहिये।

अन्य ६ अधिकारोंके पढ़नेसे भी यही बात निकलती है। (देखो पर्व४०श्लोक१७८ से २१४ तक।) पहला अधिकार अतिबालविद्या अर्थात् बालपनेसे ही उपासकाचार शास्त्रोंका पढ़ना है। इसके विषय में लिखा है कि यदि वे बालपनेसे ही इनको नहीं पढ़ेंगे तो अपनेको झूठ मूठ ब्राह्मण मानने वाले मिथ्या दृष्टियोंसे ठगे जावेंगे और मिथ्या शास्त्रोंके पढ़नेमें लग-जावेंगे। इससे सिद्ध है कि उस समय साधारण तौरपर मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंके ही द्वारा पढ़ाई होती थी और जैनब्राह्मण बनानेवालेको इस बात का भय था कि, यदि हमारे बनाये हुये ब्राह्मणोंके बालक बचपन से ही जैन शास्त्रों के पढ़नेमें न लगाये जायंगे तो प्रचलित रीतिके अनुसार वे अन्य मतियोंकी ही पाठशाला में जावेंगे और उनके शास्त्र पढ़कर अन्यमती ही हो जावेंगे।

दूसरा अधिकार कुलावधिक्रिया अर्थात् अपने कुलके आचरणोंकी रक्षारखना है। इसके विषयमें भी भय दिखलाया है कि,ऐसा न करनेसे वह दूसरे कुलका हो जावेगा। अर्थात् यदि वह अन्य मतियों के बहकानेमें आकर उनकी सी क्रिया करने लगेगा तो उनके ही कुलका हो जावेगा। तीसरा अधिकार वर्णोत्तम क्रिया है, अर्थात् अपने को सब वर्णोंसे उत्तम मानना। क्योंकि ऐसा न माननेसे न तो वह अपनेको शुद्ध कर स-कता है और न दूसरोंको; इसकी बाबत भी भय प्रकट किया है कि यदि वह अपनेको सबसे बड़ा न मानेगा तो वह अपनेको, शुद्ध करनेकी इच्छासे मिथ्यादृष्टी-कुलिङ्गियों की सेवा करने लगेगा,और कुब्रह्मको मानकर उनके सब दोष प्राप्त करलेगा। इससे भी सिद्ध है कि जैन ब्राह्मणोंके बनाये जानेके- समय अन्यमतियों का बड़ा भारी प्राबल्य और लोगोंमें उनकी बड़ी भारी श्रद्धा थी, और उस समय मिथ्यात्वी ब्राह्मण ही बड़े माने जाते थे-जैन ब्राह्मण बहुत घटिया और अशुद्ध समझे जाते थे। इसी कारणजैन ब्राह्मण बनानेवाला अपने ब्राह्मणोंको यह उपदेश देता था कि तुम भी अपनेको बड़ा मानो और सब जैनी भी इनको बड़ा मानें; जिससे ये लोग अपनेको घटिया या अशुद्ध समझकर अपनी शुद्धि करानेके वास्ते अन्य मतियोंके पास न जावें।

चौथा अधिकार पात्रत्व है, अर्थात् ये जैन ब्राह्मण दान देनेके पात्र हैं, इनको दान अवश्य देना चाहिये। इस विषयमें भी जैन-ब्राह्मणोंको डराया है कि उनको गुणीपात्र बनना चाहिये। यदि वे गुण प्राप्त नहीं करेंगे तो उनको कोई नहीं मानेगा और मान्य न होनेसे राजा भी उनका धन हरलेगा। इससे भी यही सिद्ध होता है कि,जैनब्राह्मण बनानेवालेको इस बातका निश्चय था कि मिथ्यात्वीब्राह्मण तो जातिके ब्राह्मण हैं,उनमें गुण हों वा न हों वे तो अवश्य पूजे ही जावेंगे(इस विषयमें देखो प्रथम लेख, जिससे मालूम होजायगा कि आदिपुराणमें बार २ यह बात कही गई है कि गुणहीन होने पर भी ये मिथ्यात्वी ब्राह्मण केवल अपनी जातिके घमण्डसे अपनेको पुजवाते हैं) परन्तु

उनको नवीन बनाये हुये जैनब्राह्मणोंकी बाबत पूरा भय था कि यदि ये लोग गुण प्राप्त न करेंगे तो इनको कोई भी न मानेगा और तब यह सारा ही खेल विगड़ जावेगा।

पांचवां सृष्टि अधिकार है, अर्थात् जिस प्रकार जैनधर्मकी उत्पत्ति वर्णन कीगई है उसकी रक्षा करना। अभिप्राय यह कि जैन ब्राह्मणों की इस नई सृष्टिको नये प्रमाणोंसे पुष्ट करते रहना चाहिये, अर्थात् यह सिद्ध करते रहना चाहिये कि युग की आदिमें तो सब ब्राह्मण जैनी ही बनाये गये थे; परन्तु पंचमकाल में ये लोग भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वी होगये हैं। इस कारण इनमेंसे जो कोई फिर जैनी बनता है वह अपने प्राचीन सत्यमार्ग को ही ग्रहण करता है। यहां भी डर दिखाया है कि यदि वे ऐसा न करते रहेंगे तो मिथ्यादृष्टि लोग राजा प्रजा सबको बहका लेंगे, अर्थात् वे लोग राजा को और प्रजा का समझा देंगे कि जो लोग परम्परासे सन्तान प्रति सन्तान ब्राह्मण चले आते हैं और वेदको मानते आरहे हैं वे ही ब्राह्मण हैं और वे ही पूजन के योग्य हैं, ये नवीन बने हुए जैन ब्राह्मण न ब्राह्मण हो सकते हैं और न पूजन के योग्य हैं। यदि जैनब्राह्मण राजाओं को उपदेश देकर अपने धर्म पर दृढ़ न रक्खेंगे तो राजा लोग भी अन्य मतकी धर्म सृष्टि को मांगने लगेंगे और तब जैनब्राह्मणों का कुछ भी ऐश्वर्य न रहेगा और तब जैन लोग भी अन्य मतको मानने लगेंगे।

छठा अधिकार प्रायश्चित्तका है, जिसका वर्णन पहले हो चुका है। सातवां अधिकार अवध्यत्व है, अर्थात् जैनी ब्राह्मण को चाहिये कि वह अपना यह अधिकार जताता रहे कि मैं ब्राह्मण हूँ,इस कारण मुझको किसी प्रकार मारने वा तिरस्कार करने का किसीको अधिकार नहीं है। यदि वह ऐसा अधिकार पुष्ट न करता रहेगा, तो सब लोग उसे मारने लगेंगे और ऐसा होनेसे जैन धर्मकी भी प्रमाणिता जाती रहेगी। वैदिक मतके ग्रन्थोंमें लिखा है कि ब्राह्मण अवध्य है, इससे ब्राह्मणोंको कोई नहीं मारता था। यही अधिकार जैन ब्राह्मणोंको दिये जानेकी यह कोशिश कीगई थी शोककी बात है कि, ब्राह्मणोंका अति प्राबल्य होनेके कारण ब्राह्मणोंने जो यह महाज़ुल्मका अधिकार प्राप्त करलिया था कि वे कैसा ही दोष करें और कितना ही किसी का नुकसान कर दें, परन्तु उनको कोई भी न मारसके और न उनका तिरस्कार कर सके, वही अधिकार प्राप्त करने की शिक्षा जैनब्राह्मणोंको दी गई है।

आठवां अधिकार अदण्ड्यत्व है, अर्थात् राजा भी उनको दण्ड न दे सके। जैन ब्राह्मणको शिक्षा दी गई है कि इस अधिकारको भी वह अपने वास्ते सिद्ध करता रहे यह अन्याय्य अधिकार भी ब्राह्मणोंने अपनी चलतीमें प्राप्त कर लिया था कि उनसे चाहे जैसा दोष हो जाय, परन्तु राजा भी उनको दण्ड न दे सके। शोककी बात है कि, इस अधिकारके प्राप्त करनेके लिये भी जैन ब्राह्मणों को शिक्षा दी गई है।

नवां अधिकार मान्यता है, अर्थात् सब लोग इन जैनीब्राह्मणोंको मानें और पूजें। जैनी ब्राह्मणोंको समझाया गया है कि उनको बड़ी कोशिशके साथ इस मान्यताको प्राप्त करना चाहिये। यदि लोग उनका आदर सत्कार नहीं करेंगे तो वे अपने पदसे गिर जावेंगे।

दसवां अधिकार प्रजातन्त्रसम्बन्ध है, अर्थात् अन्यमतियोंके साथ मिलते जुलते और अनेक प्रकारका सम्बन्ध रखते हुए भी उनके कारण अपने गुणोंको नष्ट न करना, इससे भी यही सिद्ध होता है कि जैन ब्राह्मणोंके बनाये जाते समय अन्य मतका बहुत ही ज्यादा प्रचार था ।

इस सारे कथनसे स्पष्ट सिद्ध है कि जैन ब्राह्मणोंके बनानेमें इस बातकी बहुत ही ज्यादा कोशिश की गई थी कि इन नवीन जैन ब्राह्मणोंको भी वे सब अधिकार प्राप्त हो जावें जो प्राचीन मिथ्यात्वी ब्राह्मणोंको प्राप्त हो रहे हैं, वे अधिकार चाहे न्यायरूप हों चाहे महाअन्यायरूप। साथ ही इस बातकी बड़ी सावधानी रक्खी गई थी कि, मिथ्यात्वी ब्राह्मणों के प्रबल प्रभाव में आकर ये नवीन ब्राह्मण फिसल न जावें, या किसी प्रकार अपने पदसे गिर न जावें, अर्थात् जिस प्रकार बन सके वे अपने इस नवीन पद को जो जैनी राजाओं के सहारेसे उनको प्राप्त होगया है बनाये रक्खें और बिगड़ने न देवें । इस ही कारण इन अधिकारोंके वर्णनमें इस बातकी शिक्षा बहुत ही तकाजेके साथ दी गई है कि ये नवीन ब्राह्मण राजाओंके श्रद्धानको डावांडोल न होने दें । क्योंकि उस समय मिथ्यामतका अधिक प्रचार होनेसे जैन राजाओंके फिसलने का खटका बराबर लगा रहता था ।

यह सारी ही रचना निस्संदेह पञ्चमकालकी है, भरत महाराजके समय की नहीं, परन्तु फिर भी उक्त दसों अधिकारोंका उपदेश भरतमहाराजके मुखसे ब्राह्मण वर्ण की स्थापनाके दिन दिलाया गया है और साथ ही इनके यह भी लिख दिया गया है कि, भरतमहाराजने यह सब उपदेश उपासकाध्ययन सूत्रके ही अनुसार किया है, परन्तु द्वादशांग वाणीमें अन्य मतियोंका इतना प्रबल भय किसी तरह भी नहीं हो सकता है । और ऐसे महाजुल्मके अधिकारोंकी प्राप्तिका उपदेश भी जिनवाणीमें सम्भव नहीं हो सकता है कि ब्राह्मणको न प्रजा ही दण्ड दे सके और न राजा ही, जिससे वे बोदंगे सांड बनकर बे-रोकटोक जो चाहे जुल्म करते रहें और कोई चूं भी न करसके।

हमारे इस विचारकी पुष्टि-कि पञ्चमकालमें ब्राह्मणोंका अति प्राबल्य हो जाने पर उनके प्रभावसे बचनेके वास्ते उनहीका रूप देकर और उनहींकी क्रियायें सिखाकर जैन ब्राह्मण बनाये गये हैं-इस बातसे भी होती है कि ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्तिके इस सारे कथनमें-जो आदि पुराणके पर्व ३८ से ४२ तकमें वर्णित है-जैन ब्राह्मणोंको धर्म का उपदेश देते हुए प्रायः उन ही शब्दोंका प्रयोग किया गया है जो वैदिक मत के खास पारिभाषिक शब्द हैं । श्रुति, स्मृति और वेद ऐसे शब्द हैं जो वैदिकधर्म के शास्त्रोंके वास्तेही व्यवहार कियेजाते हैं वेदोंको श्रुति कहते हैं और मनुयाज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंकी आज्ञायें स्मृतियां कहलाती हैं । श्रुति स्मृति और वेद आदि शब्द वैदिकधर्मके ऐसे टकसाली शब्द हैं कि स्वयं आदिपुराणके कर्त्ताने भी कई स्थानों पर उनका व्यवहार वैदिकधर्म के ग्रन्थों को ही सूचित करने के वास्ते किया है । जैसे पर्व ३९

श्लोकमें लिखा है कि श्रुतिके वाक्य भी विचार करने पर ठीक नहीं मालूम होते हैं, दुष्टों के ही बनाये हुए जान पड़ते हैं-

श्रौतान्यपि हि वाक्यानि संमतानि क्रियाविधौ । न विचारसहिष्णूनि दुःप्रणीतानि तानि वै ॥१०॥

और भी-' तान्प्राहुरक्षरम्लेच्छा येऽमी वेदोपजीविनः, तथा ' सोऽस्त्यमीषां च यद्वेदशास्त्रार्थमधमद्विजाः , आदि ४२ वें पर्व के श्लोकोंसे भी स्पष्ट होता है कि हिन्दूधर्मके वेदोंके लिए ही श्रुति और वेद शब्दोंका प्रयोग किया जाता है, किसी जैन शास्त्रके लिये नहीं ॥

श्रुति स्मृति और वेद आदि शब्दोंका ऐसा खुला हुआ और जगत्प्रसिद्ध अर्थ होने की अवस्थामें भी और आचार्य महाराजको भी यही अर्थ मान्य होनेकी हालतमें भी ये शब्द जैन ब्राह्मणोंको शिक्षा देनेमें जिस प्रकार व्यवहारमें लाये गये हैं,उससे यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि जैनी ब्राह्मणोंको बिलकुल वही रूप दिया गया था जो वैदिक ब्राह्मणोंका था । पर्व ३६में लिखा है कि वेद, पुराण, स्मृति, चरित्र, क्रियाविधि, मन्त्र, देवता-लिंग और आहारादिकी शुद्धिका यथार्थ रीतिसे वर्णन जिसमें परम ऋषियोंने किया है वही धर्म है; इसके सिवाय और सब पाखंड है । जिसके १२ अंग हैं,जो शुद्ध है और जिसमें श्रेष्ठ आचरणोंका निरूपण है, वही श्रुतज्ञान है, उसहीको वेद कहते हैं, जो हिंसाका उपदेश करनेवाला वाक्य है वह वेद नहीं है उसको तो यमराजका वाक्य मानना चाहिये ।

वेदः पुराणं स्मृतयश्चरित्रं च क्रियाविधिः । मंत्राश्च देवतालिंगमाहाराद्याश्च शुद्धयः ॥ २० ॥

एतेऽर्था यत्र तत्त्वेन प्रणीताः परमर्षिणा । स धर्मः स च सन्मार्गस्तदाभासाः स्युरन्यथा ॥२१ ॥

श्रुतं सुविहितं वेदो द्वादशांगमकल्मषम् । हिंसोपदेशि यद्वाक्यं न वेदोऽसौ कृतान्तवाक् ॥ २२ ॥

इसी प्रकार पर्व ३६ में लिखा है कि जब वह श्रावक अपने चारित्र और अध्ययन से औरोंका उपकार करता है, प्रायश्चित्त आदि सब विधियोंको जानलेता है और वेद स्मृति और पुराण आदिका जानकार हो जाता है, तब गृहस्थाचार्य हो जाता है:—

विशुद्धस्तेन वृत्तेन ततोऽभ्येति गृहीशितां । वृत्ताध्ययनसंपत्त्या परानुग्रहणक्षमः ॥ १३ ॥

प्रायश्चित्तविधानज्ञः श्रुतिस्मृतिपुराणवित् । गृहस्थाचार्यतां प्राप्तस्तदा धत्ते गृहीशिताम् ॥ १४ ॥

इसी प्रकार पर्व ३६ में लिखा है कि अन्य यजमान भी जिसकी उपासना करते हैं ऐसा वह बुद्धिमान भव्य अर्थात् जैन ब्राह्मण स्वयं पूजा करता है और अन्य लोगोंसे करांता है, वेद वेदांगके विस्तारको स्वयं पढ़ता है और दूसरोंको पढ़ाता है:—

स यजन्याजयन् धीमान् यजमानैरुपासितः । अध्यापयन्नधीयानो वेदवेदांगविस्तरम् ॥ १०३ ॥

इसी प्रकार पर्व ३६में ही लिखा है कि द्विजों अर्थात् जैनी ब्राह्मणोंकी शुद्धि श्रुति स्मृति,पुराण,चारित्र, मंत्र और क्रियाओंसे और देवताओंका चिन्ह धारण करने तथा काम का नाश करने से होती है :—

श्रुतिस्मृतिपुराणवृत्तमन्त्रक्रियाश्रिता । देवतालिङ्गकामांतकृता शुद्धिर्द्विजन्मनाम् ॥ १३९ ॥

इसी प्रकार पर्व ४० में लिखा है कि, अब मैं श्रीऋषभदेव की श्रुति के अनुसार सुरेन्द्रमन्त्र कहता हूं :-

मुनिमन्त्रोऽयमाम्नातो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। वक्ष्ये सुरेन्द्रमन्त्रं च यथा स्माहार्षभी श्रुतिः ॥ ४७ ॥

फिर इसी पर्वके श्लोक ६३ में लिखा है कि अब मैं श्रुतिके अनुसार परमेष्ठी मन्त्र कहता हूं:-

मन्त्रः परमराजादिर्मतोयं परमेष्ठिनां। परं मंत्रमितो वक्ष्ये यथाऽऽह परमा श्रुतिः ॥ ६३ ॥

फिर इसी पर्वके श्लोक १९२ में लिखा है कि श्रुति का आश्रय लेनेवाले इन द्विजों को अर्थात् जैनी ब्राह्मणोंको जो स्वतन्त्रता है उसे व्यवहारेशिता कहते हैं:-

व्यवहारेशितां प्राहुः प्रायश्चित्तादिकर्मणि। स्वतन्त्रतां द्विजस्यास्य श्रितस्य परमां श्रुतिम् ॥ १९२ ॥

वैदिकधर्ममें ग्रहत्यागीको परिव्राजक कहते हैं। जैनशास्त्रोंमें इसके स्थानमें मुनि, साधु, निर्ग्रन्थ अनगार आदि शब्द व्यवहार किये जाते हैं, परन्तु जैन ब्राह्मणोंको उपदेश देते समय आदिपुराणोंमें मुनि या साधुके स्थानमें परिव्राजक शब्दका प्रयोग किया गया है और इसी कारण मुनिदीक्षाका नाम परिव्राजक क्रिया रक्खा है तथा इसही नामसे इसका उपदेश देते हुये और अन्य मतियोंकी दीक्षाकी तरह जैन पारिव्राज्य दीक्षाको भी शुभतिथि,शुभ नक्षत्र,शुभयोग शुभमुहूर्त और शुभलग्नमें ही लेनेकी आज्ञा दी है यथा—पर्व ३९ ।

सद्गृहीतमिदं ज्ञेयं गुर्वोरात्मोपबृंहणम्। पारिव्राज्यमितो वक्ष्ये सुविशुद्धं क्रियांतरम् ॥ १५४ ॥
गार्हस्थ्यमनुपाल्यैवं गृहवासाद्विरज्यतः। यद्दीक्षाग्रहणं तद्धि पारिव्राजं प्रचक्षते ॥ १५५ ॥
पारिव्राजं परिव्राजो भावोनिर्वाणदीक्षणम्। तत्र निर्ममतावृत्त्या जातरूपस्य धारणम् ॥ १५६ ॥
प्रशस्ततिथिनक्षत्रयोगलग्नग्रहांशकैः। निर्ग्रंथाचार्यमाश्रित्य दीक्षा ग्राह्या मुमुक्षुणा ॥ १५७ ॥

वेदानुयायी लोग ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति ब्रह्माके मुखसे ही मानते हैं, जैनब्राह्मणों को उपदेश देते समय उनके इस सिद्धान्तको भी मानकर यह समझाया गया है कि श्री जिनेन्द्रही ब्रह्मा हैं और जो कोई उनके मुखकी वाणी स्वीकार करता है उसहीको उनके मुखसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मण मानना चाहिये। यथा पर्व ३९ में-

स्वयंभुवान्मुखाज्जातास्ततो देवद्विजा वयम्। व्रतचिन्हं च नः सूत्रं पवित्रं सूत्रदर्शितम् ॥ ११७ ॥
ब्राह्मणोऽपत्यमित्येवं ब्राम्हणाः समुदाहृताः। ब्रम्हा स्वयंभूर्भगवान्परमेष्ठी जिनोत्तमः ॥ १२७ ॥
सह्यादिपरमब्रम्हा जिनेंद्रो गुणबृंहणात्। परंब्रम्ह यदायत्तमामनंति मुनीश्वराः ॥ १२८ ॥
नैणाजिनधरो ब्रह्मा जटाकूर्चादिलक्षणः। यः कामगर्दभो भूत्वा प्रच्युतो ब्रम्हवर्चसात् ॥ १२९ ॥

गरज कहां तक कहें, जैनब्राह्मणोंको उपदेश देनेमें विशेषता वैदिकधर्म के ही सिद्धान्तों और पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग किया गया हैं,जिससे स्पष्ट सिद्ध है कि जैन ब्राह्मण बनानेमें वैदिक ब्राह्मणोंकी ही रीस की गई है। ब्राह्मणवर्ण स्थापन करने के दिन भरत महाराजकी तरफसे जो उपदेश इन नवीन ब्राह्मणोंको दिया जाना आदिपुराणमें लिखा है उसको गौरके साथ पढ़नेसे तो यहां तक मालूम होता है कि, इस उपदेशमें वैदिक धर्म के पारभाषिक शब्द ही व्यवहार नहीं किये गये हैं, किन्तु उन के धर्मके सिद्धान्तों और उनके देवताओंको भी मान लिया गया है और कुछ काटछांट कर उनहीका उपदेश इन जैन ब्राह्मणोंको दिया गया है।

गर्भाधान आदि क्रियाके आरम्भमें ब्राह्मणोंको रत्नत्रयका संकल्प कर अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुट से उत्पन्न हुई तीन अग्नियां उत्पन्न करनी चाहिये। ये तीनों ही अग्नियां तीर्थंकर गणधर और अन्य केवलियोंके मोक्ष कल्याणकके महोत्सवमें अत्यन्त पूज्य मानी गई थीं,इसी वास्ते यह अत्यन्त पवित्र मानी जाती हैं। इन तीनों अग्नियों को जो गार्हपत्य, आहवनीय,और दक्षिणाग्नि नामोंसे प्रसिद्ध हैं तीन कुण्डोंमें स्थापन करना चाहिये। वैदिक धर्मके शास्त्रोंमें तीन प्रकार की अग्नि इस ही नामोंसे मानी गई हैं और उक्त शास्त्रोंके कथन के अनुसार इनके यह नाम सार्थक भी होते हैं, परन्तु जैन धर्मके अनुसार ये नाम किसी तरह भी ठीक नहीं बैठते हैं। * जो इन तीनों प्रकार कीअग्नियोंमें इन मंत्रोंसे पूजा करता है वह ब्राह्मण कहलाता है और जिसके घर ऐसी पूजा नित्य होती है उसको आहिताग्नि अर्थात् अग्निहोत्री समझना चाहिए। नित्य पूजन करते समय इन तीनों अग्नियों का नियोग हव्यके पकाने में, धूप खेने में और दीपकके जलानेमें होता है। घरमें बड़े यत्नके साथ इन तीनों अग्नियोंकी रक्षा करनी चाहिए और जिनका संस्कार नहीं हुआ है ऐसे लोगोंको यह अग्नि नहीं देनी चाहिए, अर्थात् शूद्र आदिका हाथ इन अग्नियों को नहीं लगना चाहिये और जिन जैनियों के गर्भाधानादि संस्कार नहीं होते हैं उनके भी हाथ नहीं लगने देना चाहिए। अग्नि स्वयम् पवित्र नहीं है और न कोई देवता ही है, किन्तु अरहन्त देवकी मूर्तिकी पूजाके सम्बन्ध से वह पवित्र होजाती है, इसलिए ही ब्राह्मण लोग इसे पूज्य मानकर पूजा करते हैं। निर्वाण क्षेत्रोंकी पूजाके समान अग्निकी पूजा करने में कोई दोष नहीं है।

* वैदिक धर्म के अनुसार 'गार्हपत्य, वह अग्नि है, जिसे प्रत्येक गृहस्थ अपने घरमें सदा बनाये रखता है और जिसे वह अपने पुरुषाओं से पाता है और सन्तान को देता है। ऋग्वेद में अग्नि को गृहपति कहा है। गृहपतिसे ही गार्हपत्य शब्द बना है। आहवनीय वह अग्नि है,जो गार्हपत्य अग्नि में से हवन या होमके वास्ते ली जाती है। 'गार्हपत्यादुद्धृत्य होमार्थं यः संस्क्रियतेऽसः।, दक्षिणाग्नि वह है, जो दक्षिणकी तरफरक्खी जाती है। इसे 'अन्वाहार्यपचन, भी कहते हैं। पुरोहितको जो चढ़ावा दिया जाता है, वह अन्वाहार्य कहलाता है। सायणाचार्य कहते हैं 'अन्वाहरति यज्ञ सम्बन्धिदोषजातं परिहरत्यनेन इत्यन्वाहार्यो नाम ऋत्विग्भ्यो देय ओदनः।, मनुस्मृति में लिखाहै कि पितृगणोंके मासिक श्राद्धको अन्वाहार्य कहते हैं· 'पितृणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः।, अन्वाहार्य पचन का अर्थ होता है जो अन्वाहार्य में काम आवे। सबका सारांश यह हुआ कि प्राचीन समय में प्रत्येक घरमें अग्नि बड़ी रक्षाके साथ रक्खी जाती थी और उसे गार्हपत्य कहते थे। उसमें से जो अग्नि होम के वास्ते जला ली जाती थी, वह आहवनीय कहलाती थी और पितृजनोंके वास्ते नैवेद्य तैयार करनेके लिए जो जलाई जाती थी उसे दक्षिणाग्नि कहते थे। मोक्षआपटेने लिखा है कि आहवनीय पूर्वकी तरफ गार्हपत्य पश्चिम की तरफ और तीसरी अन्वाहार्य पचन दक्षिणकी तरफ जलाई जाती थी। तीसरीका दक्षिणाग्नि नाम दक्षिणकी ओर जलानेसे ही हुआहै·

आदिपुराण में जो इन अग्नियों का तीर्थंकर गणधरादि के साथ सम्बन्ध मिलाया है, वह बिलकुल असंगत ज्ञात पड़ता है।

ब्राह्मणोंको व्यवहारनय अपेक्षासे ही अग्नि पूज्य है और जैन ब्राह्मणों को अब यह व्यवहारनय अवश्य काममें लाना चाहिये:—

त्रयोऽग्नयः प्रणेयाः स्युः कर्मारम्भे द्विजोत्तमैः। रत्नत्रितयसंकल्पादग्नीन्द्रमुकुटोद्भवाः ॥ ८२ ॥
तीर्थकृद्गणभृच्छेषकेवल्यंत्यमहोत्सवे। पूजांगत्वं समासाद्य पवित्रत्वमुपागताः ॥ ८३ ॥
कुण्डत्रये प्रणेतव्यास्त्रय एते महाग्नयः। गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निप्रसिद्धयः ॥ ८४ ॥
अस्मिन्नग्नित्रये पूजां मन्त्रैः कुर्वन् द्विजोत्तमः। आहिताग्निरिति ज्ञेयो नित्येज्या यस्य सद्मनि ८५
हविष्पाके च धूपे च दीपोद्बोधनसंविधौ। वन्हीनां विनियोगः स्यादमीषां नित्यपूजने ॥ ८६ ॥
प्रयत्नेनाभिरक्ष्यं स्यादिदमग्नित्रयं गृहे। नैव दातव्यमन्येभ्यस्तेऽन्ये येस्युरसंस्कृताः ॥ ८७ ॥
न स्वतोऽग्नेः पवित्रत्वं देवतारूपमेव वा। किन्त्वर्हद्दिव्यमूर्तीज्यासम्बन्धात्पावनोऽनलः ॥८८॥
ततः पूजांगतामस्य मत्वार्चंति द्विजोत्तमाः। निर्वाणक्षेत्रपूजावत्तत्पूजाऽतो न दुष्यति ॥ ८९ ॥
व्यवहारनयापेक्षा तस्येष्टा पूज्यता द्विजैः। जैनैरध्यवहार्योऽयं नयोऽद्यत्वेऽग्रजन्मभिः ॥ ९० ॥

इन श्लोकों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि, जैन ब्राह्मणों को अग्निकी पूजा करने का उपदेश देते समय उपदेशक महाशय को इस बातका पूरा खटका था कि यह उपदेश जैनसिद्धान्त के अनुकूल नहीं, किन्तु विपरीत है, इसी कारण उन्हों ने अनेक बातें बनाकर जिस तिस तरह अग्निपूजा का दोष हटाने की कोशिश की है और आखिर में यह समझाया है कि आजकल इस बातकी ज़रूरत ही आपड़ी है किसी न किसी हेतु से जैन ब्राह्मण अग्निपूजा भी करते रहें।

शोक है कि जैन ब्राह्मण बनाने के जोशमें जैन सिद्धान्तों को यहां तक भुला दिया गया है कि इन जैन ब्राह्मणोंको शिक्षा देते समय केवल अग्निके पूजने की ही आज्ञा नहीं दी है, किन्तु विवाह संस्कारोंमें अग्नि जैसे जड़ पदार्थ की साक्षीकी भी आज्ञा दे डाली है। लिखा है कि जैन ब्राह्मण को उचित है कि, वह पहले सिद्ध भगवान्का पूजन करे, फिर तीनों अग्नियों की पूजा करके उन की साक्षी से विवाह सम्बन्धी क्रिया करें। इसी प्रकार कुछ आगे चलकर लिखा है कि, वर वधू विवाह होने पर देव और अग्निकी साक्षीसे सात दिनके वास्ते ब्रह्मचर्य ग्रहण करें।

सिद्धार्चनविधिं सम्यक् निर्वर्त्य द्विजसत्तमाः। कृताग्नित्रयसंपूजाः कुर्युस्तत्साक्षितां क्रियाम् ॥१२८॥
पाणिग्रहणदीक्षायां नियुक्तं तद्वधूवरम्। आसप्ताहं चरेद्ब्रह्मव्रतं देवाग्निसाक्षिकम् ॥ १३३॥ पर्व ३८

इसी प्रकार धरती माता की पूजा करने का भी उपदेश दिया गया है। बालकके जन्म होने पर इन जैन ब्राह्मणों को आज्ञा दीगई है कि बच्चेकी जरायु और नाल को किसी पवित्र पृथिवी में मन्त्र पढ़कर गाढ़ देना चाहिए। मन्त्रका अर्थ यह है कि हे सम्यक्दृष्टि धरती माता! तू कल्याण करने वाली हो। इस मंत्रसे मंत्रित करके उस पर जल और अक्षत डालकर पांच रत्नोंके नीचे गर्भका सब मल रखना चाहिए फिर यह मन्त्र पढ़ना चाहिए जिसका अर्थ है कि हे पृथ्वी, तेरे पुत्रोंके समान मेरे पुत्र भी चिरंजीवि हों। यह मन्त्र पढ़कर जिस खेतमें धान्य उपजता हो उसमें उस गर्भमल को रखदेना चाहिये—

जरायुपटलं चास्य नाभिनालसमायुतं । शुचौ भूमौ निखातायां विक्षिपेन्मंत्रमापठन् ॥ १२१ ॥
सम्यग्दृष्टिपदं बोध्ये सर्वमातेति चापरं । वसुंधरापदं चैव स्वान्तं द्विरुदाहरेत् ॥ १२२ ॥
मंत्रेणानेन संमंत्र्य भूमौ सोदकमक्षतं । क्षिप्त्वा गर्भमलं न्यस्तपंचरत्नतले क्षिपेत् ॥ १२३ ॥
त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा भूयासुश्चिरजीविनः । इत्युदाहृत्य तस्याहँ तत्त्वं न्यस्यं महीतले॥१२४॥पर्व४०

इन श्लोकोंसे सिद्ध है कि जैनसिद्धान्त-शास्त्रों में अन्य मतके जिन २ देवताओं को मिथ्या देवता सिद्ध किया है और जिनका पूजना लोकमूढ़ता या देवमूढ़ता बताया है, वे सब ही मिथ्या देव सम्यक् दृष्टि कहनेसे सच्चे देव हो सकते हैं, जैसा कि उक्त श्लोकों में धरतीको सम्यकदृष्टि कहकर जैनको देवी बना लिया है और जैन ब्राह्मणों को उसके पूजने की आज्ञा दे दी है ।

पूजन के विषय में जैन ब्राह्मणों को आज्ञा दी गई है कि डाभके आसन पर बैठ कर पूजन करना चाहिये और सबसे पहले अष्ट द्रव्यसे भूमि का पूजन करना चाहिए

दर्भास्तरणसंबन्धस्ततः पश्चाद्‌दुदीर्यतां । विघ्नोपशांतये दर्पमथनाय नमः पदम् ॥ ६ ॥
गंधप्रदानमंत्रश्च शीलगंधाय वै नमः । पुष्पप्रदानेमन्त्रोऽपि विमलाय नमः पदम् ॥ ७ ॥
कुर्यादक्षतपूजार्थमक्षताय नमः पदं । धूपार्थे श्रुतधूपाय नमः पदमुदाहरेत् ॥ ८ ॥
ज्ञानोद्योताय पूर्वं च दीपदाने नमः पदम् । मंत्रः परमसिद्धाय नम इत्यत्यमृतोद्‌धृतौ ॥ ९ ॥
मंत्रैरेभिस्तु संस्कृत्य यथावज्जगतीतलम् । ततोऽन्यच्च पीठिकामंत्रः पठनीय द्विजोत्तमैः ॥ १० ॥

आदिपुराण पर्व ४० ।

नित्यपूजन के मंत्रोंमें ऐसे मन्त्र पढ़नेकी आज्ञा दी है जिनका अर्थ है कि अरहंत के पुत्र की शरण लेता हूं । यथा—अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्यामि, अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्यामि (पर्व ४० श्लोक २७-२८) इसी प्रकार आज्ञा दी है कि भगवान्‌की पूजाके साथ ग्रामपति की भी पूजा करे इन्द्र के खजानची कुबेर की भी पूजा करे । यथा ग्रामपतये स्वाहा, सम्यग्दृष्टे निधिपते वैश्रवण स्वाहा, (पर्व ४०, श्लोक ३३, ३६) इसी प्रकार भूपति, नगरपति और कालश्रमण अर्थात् यक्ष की पूजाकी भी आज्ञा दी है । यथाः— सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा (पर्व ४० श्लोक ४४, ४५, ४६) इसी प्रकार इन्द्र और उन के नौकरों का पूजन करना भी बताया है । यथाः—सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परंपरेन्द्राय स्वाहा, अहमिन्द्राय स्वाहा (पर्व ४० श्लोक ५०, ५१, ५२) ।

आदि पुराणके पढ़नेसे यह भी मालूम होता है कि इन जैन ब्राह्मणोंको श्राद्ध करना आदि पितृकर्म भी सिखाया गया था; क्योंकि इन जैनब्राह्मणोंको जहां यह समझाया गया है कि वेदपाठी ब्राह्मण क्रोध करके तुमको उलाहना देंगे वहां बताया गया है कि वे यह उलाहना देंगे कि यद्यपि तू देव, अतिथि, पितृ और अग्नि सम्बन्धी कार्य ठीक २ करता है तो भी तू देवगुरु और ब्राह्मण को प्रणाम करने से विमुख ही है यथाः—

देवतातिथिपितृग्निकार्येष्वप्राकृतो भवान् । गुरुद्विजातिदेवानां प्रणामाच्च पराङ्मुखः॥१११॥पर्व३९

जैन ब्राह्मणों को वैदिक ब्राह्मणों का रूप देनेके वास्ते केवल इतना ही नहीं किया गया है कि उक्त धर्म के देवता, उन की पूजनविधि और उनकी धर्मक्रियाओं और संस्कारों को सम्यक्दृष्टि आदि पद लगाकर या कुछ काट तराश कर स्वीकार कर

लिया है; किन्तु इन जैन ब्राह्मणों की पूजा भी श्रीजिनेन्द्र देवकी पूजा के समान करने की आज्ञा दे डाली है। जैनधर्म में देव, गुरु और शास्त्र की पूजा की जाती है; किन्तु वैदिक धर्ममें देव गुरु और ब्राह्मण की पूजा मानी गई है; जैसा कि पर्व ३८ के श्लोक १११ से जो ऊपर उद्धृत हैं सिद्ध है। इस कारण इन जैनब्राह्मणोंको शिक्षा देते समय देव गुरु शास्त्र के स्थान में देव, गुरु और ब्राह्मण की ही पूजा करने की आज्ञा दी गई है। त्रेपन क्रियाओंकी शिक्षा देते हुए सातवीं क्रियाकी बाबत् पर्व ३८में लिखा है कि अपनी विभूति और शक्तिके अनुसार देव साधु और ब्राह्मणका पूजन करना चाहिये।

यथाविभवमत्रेष्टं देवर्षिद्विजपूजनं। शस्तं च नामधेयं तत्स्थाप्यमन्वयवृद्धिकृत् ॥ ८८ ॥

इसी प्रकार १६ वीं क्रिया की बाबत् इसी पर्व में लिखा है कि पहले ब्राह्मण की पूजा करके फिर व्रतावतरण क्रिया करे:-

कृतद्विजार्चनस्यास्य व्रतावतरणोचितं। वस्त्राभरणमाल्यादिग्रहणं गुर्वनुज्ञया ॥ १२४ ॥

इस ही आज्ञा के अनुसार पूजन मन्त्रोंमें भी ऐसे मन्त्र लिख दिये हैं जिनका अर्थ है कि अनादि कालके श्रोत्रियों को समर्पण (श्रोत्रिय एक प्रकार के वेदपाठी ब्राह्मण होते हैं) देव ब्राह्मण को समर्पण और अच्छे ब्राह्मण को समर्पण। यथा-अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा, देवब्राह्मणाय स्वाहा, सुब्राह्मणाय स्वाहा (पर्व ४० श्लोक ३४, ३५)।

आदि पुराण के इन कथनों से केवल यह ही सिद्ध नहीं होता है कि वेदपाठी ब्राह्मणों का ही रूप देकर जैन ब्राह्मण बनाये गये थे और इस कारण उनको हिन्दुओं की ही सब क्रियायें सिखा दी गई थीं; साथ ही यह भी मालूम होता है कि दक्षिण देशमें जैनराजाओंके समय में वेदपाठी ब्राह्मणोंमें से ही कुछ लोगोंको फुसलाकर जैनी बना लिया गया था, उनकी वृत्ति, अधिकार और क्रिया आदि पहिली ही कायम रखकर उनका नाम जैन ब्राह्मण रख लिया गया था, और यह प्रसिद्ध कर दिया गया था कि चौथे काल में तो सब ही ब्राह्मण जैनी थे जिनको श्री आदिनाथ के समय में अर्थात् युग के आदि में भरत महाराज ने स्वयं पूजकर और दान आदि देकर ब्राह्मण माना था, किन्तु पंचम कालमें ये लोग भ्रष्ट होकर वेद के मानने वाले हो गये हैं। अर्थात् जैनब्राह्मण बनने से ये लोग कोई नवीन पंथ या नवीन मार्ग ग्रहण नहीं करते हैं किन्तु अपना प्राचीन धर्म अंगीकार करते हैं।

हमारे इस विचार की पुष्टि आदिपुराणके उस कथनसे होती है, जहां जैन राजाओं को उपदेश देते हुए कहा है कि प्रजा को दुःख देने वाले अक्षरम्लेच्छ अपने आस पास जो हों उनको उनकी कुलशुद्धि आदि करके अपने वश में कर लेना चाहिये। राजासे इस प्रकार आदर सत्कार पाकर वे लोग फिर उपद्रव नहीं करेंगे। यदि इस प्रकार उनका आदर सत्कार नहीं किया जावेगा तो वे रात दिन उपद्रव करते रहेंगे, और साथ ही इसके यह भी बताया है कि वेदपाठी ब्राह्मणों को ही अक्षरम्लेच्छ कहते हैं। अर्थात् वेदपाठी ब्राह्मणों को कुल शुद्ध करके उनको अपने में मिलाकर उन का आदर सत्कार करना चाहिये:-

प्रदेशे चाक्षरम्लेच्छान्प्रजाबाधाविधायिनः । कुलशुद्धिप्रदानाद्यैः स्वसात्कुर्यादुपक्रमैः ॥ १७९ ॥
विक्रियां न भजंत्येते प्रभुणा कृतसत्क्रियाः । प्रभोरलब्धसम्माना विक्रियन्ते हि तेन्वहम् ॥ १८० ॥
तान्याहुरक्षरम्लेच्छा येऽमी वेदोपजीविनः । अधर्माक्षरसम्पाठैर्लोकव्यामोहकारिणः ॥ १८२ ॥

हमारे इस विचार की सिद्धि पर्व ३९ में वर्णित दीक्षान्वय क्रिया के पढ़ने से और भी अच्छी तरह हो जाती है। यद्यपि इस क्रिया का उपदेश भरत महाराज ने तमाम अन्य मतियों को जैनी बनाने के वास्ते ब्राह्मण वर्ण की स्थापना के दिन अपने बनाये हुए ब्राह्मणों को दिया है, परन्तु जब इस उपदेश को अधिक गौर के साथ पढ़ा जाता है तो मालूम होता है कि सभी जातिके लोगोंको जैनी बनानेके वास्ते नहीं, किन्तु वेद के माननेवाले ब्राह्मणोंकोही जैनीब्राह्मण बनानेके वास्ते यह क्रिया वर्णन की गई है।

सारांश इस दीक्षान्वय क्रिया का इस प्रकार है कि जब कोई मिथ्यादृष्टि जैनधर्म को स्वीकार करना चाहे तब वह मुनि महाराज या गृहस्थाचार्यके पास आकर प्रार्थना करे कि मुझे सच्चे धर्मका उपदेश दो, क्योंकि अन्य मतके सिद्धान्त मुझे दूषित मालूम होते हैं। धर्मक्रियाओं के करने में जो श्रुति अर्थात् वेद के वाक्य माने जाते हैं वे भी ठीक मालूम नहीं होते हैं, दुष्ट लोगों के बनाये हुए प्रतीत होते हैं। (दुनियां में अनेक मिथ्या मत प्रचलित हैं। हिन्दुस्तान में भी बौद्ध नास्तिक आदि अनेक मत प्रचलित थे। नास्तिकों का खण्डन आदिपुराण में ही कई स्थानों पर किया गया है, परन्तु यहांपर प्रार्थना करने वाला केवल एक वेदमतकी ही निन्दा करता हुआ आता है, जिससे जान पड़ता है कि यह दीक्षान्वय क्रिया वेद के मानने वालों को ही जैनी बनानेके वास्ते है। प्रार्थना कर चुकने पर उसको समझाना चाहिये कि आप्तवचन ही मानने योग्य होता है और श्रीअरहंत भगवान्ही आप्त हैं। अरहन्तके मतमें शास्त्रों मन्त्रों और क्रियाओं का बहुत अच्छी तरह निरूपण किया गया है।

जिसमें वेद, पुराण, स्मृति, चरित्र, क्रियाविधि, मन्त्र, देवता-लिंग, आहार और शुद्धिका यथार्थ रीतिसे निरूपण किया है वही धर्म है, शेष सब पाखंड हैं। जिस के बारह अंग हैं और जिसमें श्रेष्ठ आचरणोंका वर्णन है, वह वेद है। जिसमें हिंसा का उपदेश हो वह वेद नहीं हो सकता, वह तो यमराजका वाक्य है। (वेद, स्मृति आदि ब्राह्मणधर्मके ही पारभाषिक शब्दोंका प्रयोग करने, क्रियामन्त्र आदि का वर्णन करने और जैन शास्त्रोंको वेद बतानेसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदपाठी ब्राह्मणोंको ही फुसलाने और समझानेके वास्ते ये सब बातें सिखाई जा रही हैं।)

जिसमें हिंसाका निषेध है वही पुराण और धर्मशास्त्र है। वे पुराण और धर्मशास्त्र जिनमें हिंसाका उपदेश है धूर्तोंके बनाये हुए हैं। देवपूजा आदि आर्योंके करने योग्य छः कर्म ही चारित्र हैं। गर्भाधानसे लेकर निर्वाणपर्यन्तकी जो ५३ क्रियायें हैं। वे ही ठीक क्रिया हैं। गर्भ से मरणपर्यन्त की जो क्रियायें अन्य मत में कही गई हैं वे मानने योग्य नहीं हैं। इन ५३ क्रियाओंमें जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, वे ही सच्चे मन्त्र हैं। प्राणियों की हिंसा करने में जिन मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है वे खोटे मन्त्र है।

तीर्थंकर आदि देव ही शान्ति करने वाले देव हैं, मांसभक्षी क्रूर देवता त्यागने योग्य हैं। निग्रन्थपना ही सच्चा लिंग है, हरिणका चमड़ा आदि रखना कुलिंग है। मांस-रहित भोजन करना ही आहार शुद्धि है, मांसभोजीको सर्वघाती समझना चाहिये। जिनेंद्र मुनि या स्वदारसंतोषी गृहस्थके ही कामशुद्धि हो सकती है और सब बहकाने वाले हैं। (इस सारे ही उपदेश से प्रकट है कि वैदिक मतके ब्राह्मणको ही जैनी बनानेके वास्ते ये बातें सिखाई गई हैं।) इस प्रकार उपदेश पाने पर वह मिथ्या मार्ग को छोड़ता है और सच्चे मार्गमें लगताहै। उस समय गुरु ही उसका पिता है और तत्वोंका ज्ञान होना ही संस्कार किया हुआ उसका गर्भ है जिससे वह भव्य पुरुष धर्मरूप जन्म धारण कर अवतीर्ण होता है। इस भव्य पुरुषकी यह अवतारक्रिया गर्भाधान क्रियाके समान मानी जाती है।

इसके बाद वह व्रत ग्रहण करता है, और उसको श्रावककी दीक्षा दी जाती है, अर्थात् पूजनके पश्चात् गुरु मुद्राकी रीतिसे उसकेमस्तकका स्पर्श करके उससे कहा जावे कि तू अब पवित्र हो गया है, फिर उसको नमस्कार मंत्र दिया जावे, इसके बाद वह मिथ्यादेवोंको अपने घरसे बाहर निकाल दे, उन देवताओंसे कहे कि मैंने अपने अज्ञानसे इतने दिन तक बड़े आदरके साथ आप की पूजा की, अब मैं सिर्फ अपने ही मतके देवोंकी पूजा करूंगा, इस कारण क्रोध करनेसे कुछ लाभ नहीं है। आप अब किसी दूसरी जगह ही रहें। ऐसा कहकर वह उन देवताओंको किसी दूसरी जगह रख आवे। (इससे भी सिद्ध है कि नित्य पूजन करने वाले वैदिक धर्मके ब्राह्मणको ही जैनी बनानेके वास्ते यह क्रिया है, न कि साधारण लोगों के वास्ते।)

इसके बाद वह द्वादशांग वाणीका अर्थ सुनता है, फिर चौदह पूर्वको भी सुनता है, फिर अन्य मत के ग्रन्थ देखता है, फिर उपवासके दिन आत्मध्यान करने लगता है, और फिर उसको जनेऊ दिया जाता है। (इससे भी सिद्ध है कि ब्राह्मणको ही जैनी बनाने के वास्ते यह उपदेश है। क्योंकि सर्व साधारणको अर्थात् शूद्र आदिको जनेऊ नहीं दिया जाता है। ब्राह्मणको जनेऊ देनेका यहां यह अर्थ है कि मिथ्या संस्कारके द्वारा जो उसने पहले जनेऊ पहन रक्खा था वह निकाल दिया जावे और जैनधर्मके संस्कारके द्वारा उसको जनेऊ पहनाया जावे। इसी प्रकार उसका पहला विवाह भी रद्द करके उस ही स्त्रीके साथ दोबारा विवाह करनेका उपदेश है, जिसका कथन आगे आवेगा।) अब वह देवपूजा आदि षट्कर्म करने लगता है और अपना गोत्र और जाति आदि भी बदल लेता है। यथाः— —पर्व ३९।

जैनोपासकदीक्षा स्यात्समयः समयोचितम्। दधतो गोत्रजात्यादि नामांतरमतः परम्॥ ५६॥

उसका गोत्र और जाति आदि भी बदल देनेका मतलब यह मालूम होता है कि, वह फिर अपनी पहली ब्राह्मण जातिमें न मिल सके और दो चार पीढ़ी बीत जाने पर इस बातका कुछ भी पता न चल सके कि वह पहले कौन था।

फिर वह उपासकाध्ययन सूत्रको पढ़े, जिसमें श्रावकोंकी क्रियायें वर्णन की गई हैं। इसके पढ़ चुकनेके बाद वह गृहस्थ होता है (इससे भी सिद्ध है कि वह ब्राह्मण ही है, जिसको इस प्रकार जैनी बनाया जा रहा है, क्योंकि धर्म क्रियाओं को सीखनेके पीछे गृहस्थ होना यह ब्राह्मण का ही कार्य हो सकता है अन्य का नहीं। अन्य वर्ण वालों को तो अपने अपने वर्ण का काम सीखने के बाद गृहस्थ होना चाहिए।) फिर वह अपनी स्त्री को भी समझा बुझाकर श्राविका बनाता है और उससे जैनधर्मके संस्कारोंके अनुसार दोबारा विवाह करता है। (जैनधर्म के नवीन बनाये हुए संस्कारोंका प्रभाव बढ़ानेके वास्तेही दोबारा विवाह करनेका तरीका निकाला गया होगा) अर्थात् मिथ्यात्व अवस्थामें इसका जो विवाह हुआ था वह रद्द करके उसी स्त्रीके साथ जैन मंत्रों और क्रियाओंके द्वारा फिर विवाह करता है।

फिर वह भव्य पुरुष ऐसे श्रावकोंके साथ-जिनको वर्णलाभ हो चुका है और जो समान जीविका करनेवाले हैं-सम्बन्ध जोड़नेके वास्ते चार मुखिया श्रावकों को बुलाकर अर्थात् पंचोंको इकट्ठा करके प्रार्थना करे कि आप मुझको भी अपने समान करके मेरा उपकार करें, और कहे कि आप संसारसे पार करनेवाले देव ब्राह्मण हैं और संसारमें पूज्य हैं, आपकी कृपासे अब मुझको भी वर्णलाभ होना चाहिए उसकी ऐसी प्रार्थना पर वे लोग कहें कि बहुत अच्छा, जिस तरह आपने कहा है वैसे ही होगा क्योंकि आप सर्व प्रकार प्रशंसाके योग्य हैं। अन्य कोई द्विज (ब्राह्मण) आपकी क्या बराबरी कर सकता है? आप जैसे पुरुषोंके न मिलने पर हम लोगोंको समान जीविका करनेवाले मिथ्यादृष्टियोंके साथ ही सम्बन्ध करना पड़ता था। इस प्रकार उसको वर्णलाभ होजाता है, अर्थात् वह भी उन लोगोंमें मिल जाता है।

इस वर्णलाभ क्रियाके पढ़ने से इस विषयमें कोई भी संदेह नहीं रहता है कि यह दीक्षान्वय क्रिया वैदिक ब्राह्मणोंको ही जैनी ब्राह्मण बनानेके वास्ते वर्णन की गई है। क्योंकि वह नवीन जैनी जिनसे अपने शामिल कर लेनेकी प्रार्थना करता है, जैनी ब्राह्मण ही होने चाहिए, न कि साधारण जैनी तभी तो वह उनसे यह कहता है कि आप संसारसे पार करनेवाले देव ब्राह्मण हैं और संसारमें पूज्य हैं। और स्वयम् भी वह जैन ब्राह्मण ही बना हो न कि साधारण जैनी, तब ही तो वह उनसे प्रार्थना कर सकता है कि कृपा करके मुझको भी आप अपने जैसा ही बना लीजिए, और तब ही तो वे लोग उससे कहेंगे कि अन्य द्विज अर्थात् और कोई ब्राह्मण तेरी बराबरी क्या कर सकते हैं?

देवब्राह्मण जिनसे वह अपनेको शामिल कर लेनेकी प्रार्थना करता है ऐसे ही होने चाहिए जो अन्यमतसे ही जैनी हुए हों। तब ही तो यह लिखा गया है कि वह नवीन जैनी ऐसे श्रावकोंके साथ सम्बन्ध करने के वास्ते, जिनको वर्णलाभ हो चुका है,

इस प्रकार वर्णलाभ करनेकी कोशिश करे, और तब ही तो वे लोग उसको यह जवाब देते हैं कि तुम जैसे सम्यक् दृष्टियोंकी कमीके कारण ही हमको अपने समान जीविका करने वाले अन्यमतियों से (अर्थात वैदिक ब्राह्मणों से) सम्बन्ध करना पड़ता है। अर्थात् जब इस प्रकार होते होते जैनी ब्राह्मण अधिक हो जावेंगे तब हम अन्यमती ब्राह्मणों से बिलकुलही सम्बन्ध तोड़ देंगे— पर्व ३९

वर्णलाभस्ततोऽस्य स्यात्संबंधं संविधित्सतः । समानाजीविभिर्लब्धवर्णैरन्यैरुपासकैः ॥ ६१ ॥
चतुरः श्रावकान् ज्येष्ठानाहूय कृतसत्क्रियान् । तान्ब्रूयादस्म्यनुग्राह्यो भवद्भिः स्वसमीकृतः ॥ ६२ ॥
यूयं निस्तारका देव ब्राह्मणा लोकपूजिताः । अहं च कृतदीक्षोऽस्मि गृहीतोपासकव्रतः ॥ ६३ ॥
एवं कृतव्रतस्याद्य वर्णलाभो ममोचितः । सुलभः सोऽपि युष्माकमनुज्ञानात्सधर्मणाम् ॥ ६८ ॥
इत्युक्तास्ते च तं सत्यमेवमस्तु समंजसम् । त्वयोक्तं श्लाघ्यमेवैतत्कोऽन्यस्त्वत्सदृशो द्विजः॥६९॥
युष्मादृशामलाभे तु मिथ्यादृष्टिभिरप्यमा । समानाजीविभिः कर्तुं संबंधोऽभिमतो हि नः ॥७०॥

वर्णलाभ के इस कथन से यह भी मालूम होता है कि जब अन्यमती ब्राह्मणों को जैनी ब्राह्मण बनाना शुरू किया गया था, तब शुरूमें अपनी संख्या कम होनेके कारण और वर्णव्यवस्था की मान्यता अधिक होने के सबब इन जैनी ब्राह्मणों को अन्यमती ब्राह्मणों से ही विवाह आदि सम्बन्ध रखना पड़ता था, इसी कारण उस समय लाचार होकर इन जैनी ब्राह्मणों को अन्यमती ब्राह्मणों की अनेक क्रियायें माननी पड़ीं, और इनके ऐसा करने से धीरे २ अन्य जैनियों में भी इन क्रियाओं का प्रवेश हो गया और फिर होते २ जैन ग्रन्थोंमें भी इनका कथन होने लगा।

वर्णलाभ होने पर वह नवीन जैनी देव पूजादि षट्कर्म अर्थात् कुलचर्या करने लगता है और फिर जब वह अपनी वृत्ति और पठन पाठन से दूसरों का उपकार करने लगता है, अर्थात् अन्य ब्राह्मणों के समान यजमानों की सब क्रियायें कराने लगता है प्रायश्चित्त आदि सब विधानों को जान लेता है, वेद स्मृति और पुराण आदिका जानकार होजाता है, तब वह गृहस्थाचार्य होजाता है:— पर्व ३९

विशुद्धस्तेन वृत्तेन ततोऽभ्येति गृहीशिताम् । वृत्ताध्ययनसंपत्त्या परानुग्रहणक्षमः ॥ ७३ ॥
प्रायश्चित्तविधानज्ञः श्रुतिस्मृतिपुराणवित् । गृहस्थाचार्यतां प्राप्तस्तदा धत्ते गृहीशितां ॥ ७४ ॥

इन श्लोकों से स्पष्ट सिद्ध होगया कि वेदपाठी ब्राह्मणों को ही जैन ब्राह्मण बनाने के वास्ते यह दीक्षान्वय क्रिया बनाई गई है और श्रुति स्मृति पुराण आदिके अनुसार जो कुछ वृत्ति इनब्राह्मणों की थी और जो जो कुछ क्रियायें ये लोग जैनी होनेसे पहले करते थे या यजमानों से कराते थे, जैन होने के पश्चात् भी उनकी वे ही वृत्तियां और क्रियायें कायम रक्खी गईं, यहां तक कि उनकी वृत्तियों और क्रियाओं के नाम भी वही रहने दिये जो पहले थे। तब ही तो इस नवीन जैनी को गृहस्थाचार्य होजाने और प्रायश्चित्तादि देनेका अधिकार प्राप्त कर लेने के वास्ते श्रुति स्मृति और पुराणो की जानकारी प्राप्त करने की आज्ञा इन श्लोकों में दी गई है।

जैन ब्राह्मण को दस अधिकार प्राप्त कर,लेनेका जो कथन इस लेखमें पहले किया गया है, और इन जैन ब्राह्मणों को उपदेश देते समय जो वैदिक मतके पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, तथा उनके अग्नि, और भूमि आदि देवताओंके पूजने की जो शिक्षा इन ब्राह्मणों को दी गई है, इन सब बातों को अर्थात् इस लेख को इस स्थान पर फिर दोबारा पढ़ने से,और इसी के साथ पहले लेख को भी पढ़ लेने से यह बात बिलकुल स्पष्ट होजाती है कि पंचमकाल में जिस समय हिन्दुस्तान में ब्राह्मणों का जोर बढ़ गया था, वे लोग जैन और बौद्धोंसे पूरी २ घृणा करने लगे थे और इन में वर्ण या जाति का भेद और गर्भाधानादि क्रिया न होने के कारण वे लोग इनको शूद्रसे भी घटिया मानते थे और ब्राह्मणोंका अधिक प्रचार और प्रभाव होनेके कारण जब कि जैनी लोग भी पठन पाठन आदि उनहीं से कराते थे, उनके अनेक संस्कार, अनेक क्रिया, और,उनकी अनेक रीतियां मानने लगे थे और लाचार होकर बहुत से कार्य उन्हींसे कराते थे, तब किसी समय किसी जैनी राजा का आश्रय पाकर उन्हीं ब्राह्मणोंमें से कुछ ब्राह्मणों कोफुसलाकर जैनी बनाया गया और उनसे वही काम लिया गया जो वे पहले से करते चले आये थे, अर्थात् उनको वैदिक ब्राह्मण के स्थानमें जैन ब्राह्मण बना लिया गया और अन्य जैनियों को उनका यजमान बना दिया गया। इस समय भी जो जैनी ब्राह्मण दक्षिण देशमें मौजूद है वे भी अन्य ब्राह्मणों के समान ही जैन यजमानों का काम करते हैं और प्रायः वे ही सब क्रियायें कराते हैं जो अन्य हिन्दुओं के यहां होती हैं।

स्वयं आदि पुराण का कथन ही इस बातका साक्षात् सबूत होते हुए-कि ये ब्राह्मण पंचम कालमें ही बनाये गये हैं। उसका यह कथन किसी तरहभी माननेके योग्य नहीं होसकता है कि चौथे कालके प्रारम्भमें ही भरत महाराज के द्वारा ब्राह्मण वर्ण की स्थापना हुई थी और यह सब उपदेश भरत महाराज ने ही ब्राह्मण वर्ण स्थापन करनेके दिन ब्राह्मणोंको दिया था।

आदिपुराण के उस कथन का आशय यह है कि भरत महाराज के द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापना होने से पहले ब्राह्मण वर्ण हो नहीं था, अर्थात् उस समय क्षत्री वैश्य और शूद्र ये ही तीन प्रकार के मनुष्य थे, ब्राह्मण कोई था ही नहीं। तब ही तो भगवानके द्वारा तीन वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करके लिखा है कि अपने मुखसे शास्त्रों को पढ़ाने वाले ब्राह्मणों को भरत रचेगा। पढ़ना पढ़ाना, दान देना लेना, और पूजा करना कराना उनकी आजीविका होगी। यह भविष्यद्वाणी करने के पश्चात् आदि पुराणमें अगला श्लोक यह लिखा है कि शूद्र शूद्र की ही कन्या से विवाह करे, वैश्य अपने वर्णकी कन्यासे और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे, क्षत्री अपने वर्णकी कन्यासे और

वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह करे और ब्राह्मण अपने वर्ण की कन्या से विवाह करे कभी अन्य वर्णकी कन्यासे भी करलें—पर्व १६

मुखतोध्यापयन् शास्त्रं भरतः स्रक्ष्यति द्विजान्। अधीत्यध्यापने दानं प्रतिच्छेज्येति तत्क्रियाः २४५
शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः। वहेत्स्वांते च राजन्यः स्वां द्विजन्माक्वचिच्चताः २४७

भरतमहाराज के द्वारा ब्राह्मण वर्णकी स्थापना का कथन तो स्वयम् उस उपदेश के कथन से ही जड़ मूलसे उखड़ जाता है जो ब्राह्मण वर्ण की स्थापना के दिन भरतमहाराजकी तरफसे ब्राह्मणोंको दिया जाना आदिपुराण में वर्णन किया गया है, जैसा कि हमने इस लेखमें और इससे पहले लेखमें दिखलाया है, परन्तु इस बातका पता नहीं लगता है कि भरत महाराज के द्वारा ब्राह्मण बनाये जाने की भविष्यद्वाणी और यह विवाह सम्बन्धी आज्ञा जो उक्त श्लोकों में लिखी हुई है किस ने दी और किस समय दी। श्रीभगवान् ने तो न यह भविष्यद्वाणी ही कही और न यह आज्ञा ही दी, क्योंकि अव्वल तो आदिपुराण में ही ऐसा नहीं लिखा, वरन् आदिपुराणमें तो ये दोनों श्लोक बिलकुल उधारे से ही रक्खे हुए मालूम होते हैं। इस के सिवाय यदि श्रीभगवान्की तरफ़ से यह बताया जाता कि चौथा वर्ण ब्राह्मण का भरतके द्वारा स्थापन होगा और इसी कारण उस वर्णकी बावत विवाह का नियम भी पहलेसे ही बता दिया गया होता, तो सब प्रजाको और विशेष कर भरतमहाराज को इसकी खबर जरूर होती, परन्तु ऐसा होनेकी अवस्थामें ब्राह्मण वर्ण स्थापन करनेके पश्चात् सोलह स्वप्न आने पर न तो भरतमहाराजको कोई घबराहट ही होती और न वे समवसरणमें जाकर श्रीभगवान्से ही यह कहते कि मैंने आपके होते हुए ब्राह्मणवर्ण बनाकर बड़ी मूर्खताका काम करडाला है, कार्य योग्य हुआ है या अयोग्य, इस चिन्ता में मेरा मन डावांडोल हो रहा है, आप कृपा कर मेरे मनको स्थिर कीजिये। और इस का उत्तर भी श्रीभगवान् वह न देते जो आदिपुराणमें लिखा गया है, अर्थात् वे यह न कहते कि तूने जो द्विजोंका सन्मान किया है उस में अमुक दोष है, किन्तु यही कहते कि हम तो पहले ही कहचुके थे कि तुम्हारे द्वारा ब्राह्मण वर्ण को स्थापना होगी और हम तो इन ब्राह्मणों के विवाहका नियम भी पहले ही बता चुके हैं। पर्व ४१।

विश्वस्य धर्मसर्गस्य त्वयिसाक्षात्प्रणेतरि। स्थिते मयाऽतिबालिश्यादिदमाचरितं विभो॥ ३२॥
दोषः कोऽत्रगुणः कोऽत्र किमेतत्सांप्रतं न वा। दोलायमानमिति मे मनः स्थापय निश्चितौ॥ ३३॥
साधुवत्सत्कृतं साधु धार्मिकद्विजपूजनम्। किन्तु दोषानुषंगोऽत्र कोऽप्यस्ति स निशम्यताम्॥४५॥

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि ये दोनों श्लोक वैसे ही अप्रमाण हैं, जैसा कि भरत महाराज के द्वारा ब्राह्मण वर्ण स्थापन होने का कथन।

विवाहके सम्बन्ध में ब्राह्मणोंके यहां बिलकुल यही नियम है जो उक्त श्लोक २४७ में वर्णन किया गया है। इससे मालूम होता है कि विवाह का यह नियम भी उन्हींसे

उधार लिया गया है, बल्कि इस से भी ज्यादा यह मालूम होता है कि वेदपाठी ब्राह्मणों को जैनी बनानेसे उनके अनेक रीतिरिवाजों, सिद्धान्तों और देवताओंको स्वीकार करते हुए जैनियोंको क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण भी ब्राह्मण वर्णको मानने के कारण ही मानने पड़े हैं, तब ही तो जैनकथाग्रन्थों में इन वर्णों के वे ही लक्षण माने गये हैं, जो वैदिक शास्त्रोंमें वर्णित हैं।

ब्राह्मणों का सिद्धान्त है कि यह सारी सृष्टि ब्रह्मा के द्वारा सृजी गयी है। इस बात को वे अलंकार के तौर पर इस तरह वर्णन करते हैं कि, ब्राह्मण उस की सृष्टि के मुख हैं, क्षत्री भुजा हैं, वैश्य धड़ हैं और शूद्र पैर हैं, और इसी को वे कभी कभी इस रूपमें भी वर्णन कर देते हैं कि ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुए हैं, क्षत्री भुजासे, वैश्य धड़से और शूद्र पैरोंसे। शोक है कि कुछ ब्राह्मणोंको जैनी ब्राह्मण बनानेके कारण उनके ऐसे ऐसे सिद्धान्त भी जैनधर्ममें शामिल होगये और सब से ज्यादा शोक इस बातका है कि उनके अलंकारोंने जैनधर्ममें आकर वास्तविकता का रूप धारण कर लिया। तब ही तो आदिपुराणमें बार बार श्रीआदिनाथ भगवान्को ब्रह्मा सिद्ध किया गया है और उनका यह सिद्धान्त स्वीकार करके कि जो ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हो वही ब्राह्मण है इस बात के सिद्ध करने की बार बार कोशिश की गई है कि तीर्थंकर भगवान्की वाणीको स्वीकार करनेसे जैनी ब्राह्मण ब्रह्माके ही मुख से उत्पन्न हुए हैं (इस के वास्ते देखो पहला लेख) और इसी प्रकार अन्यवर्णों के वास्ते यह बात बनानी पड़ी है कि भगवान् ने अपने दोनों हाथोंमें शस्त्र धारण करके क्षत्रियों की रचना की, क्योंकि जो हाथमें शस्त्र लेकर दूसरोंकी रक्षा करे वही क्षत्री है, फिर भगवान ने अपने उरुओंसे यात्रा करना अर्थात् परदेश जाना दिखला कर वैश्यों की सृष्टि की, क्योंकि जलस्थल यात्रा करके व्यापार करना ही वैश्यों की मुख्य आजीविका है और नीच कामोंमें तत्पर रहने वाले शूद्रोंकी रचना भगवान् ने अपने पैरों से की, क्योंकि उत्तम वर्णवालोंकी शुश्रूषा करना आदि शूद्रोंकी आजीविका है- पर्व १६।

स्वदोर्भ्यां धारयन् शस्त्रं क्षत्रियानसृजद्विभुः। क्षतत्राणे नियुक्ता हि क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः ॥२४३॥
ऊरुभ्यां दर्शयन्यात्रामस्राक्षीद्वणिजः प्रभुः। जलस्थलादियात्राभिस्तद्वृत्तिर्वार्त्तया यतः ॥ २४४ ॥
न्यग्वृत्तिनियतान् शूद्रान् पद्भ्यामेवासृजत्सुधीः। वर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्वृत्तिर्नैकधा स्मृता ॥२४५॥

गरज कहां तक कहा जाय जैन ब्राह्मण बनानेके लिये जैनधर्ममें हिन्दूधर्मकी बीसों बातें शामिल करदी गई और जैनधर्मका ढांचा ही बदल दिया गया।

आदिपुराण के कथनानुसार आदिनाथ भगवान् को केवल ज्ञान होने के पश्चात् भरत महाराज दिग्विजय को निकले थे। इस दिग्विजय में उन्हें ६० हजार वर्ष लगे थे और उन्होंने इस विजययात्रा के बाद ही ब्राह्मणवर्ण की स्थापना की थी। अर्थात् भगवान्को केवल ज्ञान उत्पन्न होने के ६० हजार वर्ष पीछे ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति

हुई है । (देखो पर्व २४ श्लोक २, पर्व २६ श्लोक १-५, और पर्व ३८ श्लोक ३ से २३ तक ।) आदिपुराणमें यह भी लिखा है कि युग के आदिमें भगवान ने उस समय के लोगोंको क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंमें विभाजित करके और उनको पृथक् पृथक् कार्य सिखलाकर कर्मभूमिकी प्रथा चलाई (देखो पर्व १६ श्लोक २४३-४५) इससे आगे २४६ वें श्लोकमें यह भविष्यद्वाणी की गई है कि चौथा ब्राह्मण वर्ण भरत बनावेगा । पढ़ना पढ़ाना, दान देना लेना और पूजन करना कराना इस वर्ण की आजीविका होगी ।

आदि पुराणके उक्त कथनका आशय यही है कि भगवानके कैवल्यके ६० हजार वर्ष बादतक इस देशमें ब्राह्मणवर्णका नाम भी नहीं था, परन्तु इसी ग्रन्थकी कई कथाओंसे इस बातका खण्डन होता है ।

१-आदिनाथ भगवान् दीक्षा लेनेके एक वर्ष बाद जब चर्या करते हुए हस्तिनापुर पहुंचे हैं, तब श्रेयांस राजाको कुछ स्वप्न आये थे और उनका फल उनके निमित्तज्ञानी पुरोहितने बतलाया था । स्वप्नोंके फल बतलाने के लिए और भी कई स्थानोंमें पुरोहितोंसे निवेदन किया गया है । अब यह देखना चाहिये कि ये किस वर्णके होते थे । ब्राह्मणेतर तीन वर्णोंके तो ये हो नहीं सकते । क्योंकि इन तीन वर्णों के जो लक्षण उक्त ग्रन्थको मान्य हैं वे उक्त पुरोहितोंमें घटित नहीं हो सकते । अतः ये ब्राह्मण वर्ण के ही थे और पर्व १६ के २४६ वें श्लोक में ब्राह्मणों के कर्मों से इन के कर्म बराबर मिलते हैं । आज कल भी ब्राह्मण वर्ण के ही पुरोहित होते हैं । गरज यह कि राजा श्रेयांस का पुरोहित ब्राह्मण ही था, और जैन ब्राह्मण था । क्योंकि उसने स्वप्नों का फल बतलाते हुए कहा था कि आज श्रीभगवान् आपके घर आवेंगे और उनकी योग्य विनय करनेसे बड़ा भारी पुण्य प्राप्त होगा । (देखो पर्व २० श्लोक ३६-४३ ।) इससे सिद्ध होता है कि भगवानके दीक्षा लेनेके एक वर्ष पीछे, अर्थात् ब्राह्मणवर्णकी स्थापना के लगभग ६० हज़ार वर्ष पहले भी, ब्राह्मणवर्ण था और श्रेयांस का पुरोहित उसी वर्णका था ।

२-भरतमहाराजके दरबारके रत्नोंमें एक रत्न पुरोहित भी था, जिनका नाम बुद्धिसागर था । लिखा है कि सारी धर्म क्रियायें और दैवसम्बन्धी इलाज उसके अधीन थे और वह बड़ा भारी विद्वान् था । यथाः—

बुद्धिसागर नामास्य पुरोधाः पुण्यधीरभूत् । धर्म्या क्रिया यदायत्ता प्रतीकारोऽपि दैविके ॥ १७५ ॥
पर्व ३७ ।

इससे मालूम होता है कि भरतमहाराजकी सारी धर्मक्रियायें यही करता कराता था । अयोध्यानगरमेंही पैदा हुआ था और भरतमहाराजकी दिग्विजयमें बराबर साथ रहा है । 'प्रतीकारोऽपि दैविके' पदसे जान पड़ता है कि वह देवोंके वश करनेमें निपुण था, अर्थात् मंत्रसिद्धि आदिके कार्य भी करता था । २२ वें पर्वके ४५-५५ श्लो-

कोंमें लिखा है कि दिग्विजयके शुरूमें ही जब भरतजी लवणसमुद्रके किनारे पहुंचे तब मागधदेवको जीतनेके लिए उन्होंने उपवास किया, मंत्रतंत्रोंसे हथियारोंका संस्कार किया और अनेक क्रियायें करके पुरोहितके सामने पंचपरमेष्ठीका पूजन किया ।–'पुरोधोऽधि ष्ठतः पूजां स व्यधात्परमेष्ठिनां ।, आगे इस पुरोहितने भरतको मंगल आशीर्वाद दिया है और उनकी विजयकामना की है । इसके बाद सिन्धुनदीके संगम स्थलके देवको जीतनेके समय तो स्पष्ट ही लिख दिया गया है कि समस्त विधिविधानके जानने वाले पुरोहितने मंत्रोंके द्वारा विधिपूर्वक जिनेन्द्रदेव की पूजाकी और फिर गन्धोदक मिश्रित शेषाक्षतों से चक्रवर्तीको पुण्याशीर्वाद दिया । इन सब बातों से खूब अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि भरतजीका पुरोहित जैन ब्राह्मण ही था और उन्हींके सदृश जैन ब्राह्मण था जिनका इस कथन के ६० हजार वर्ष पीछे भरतजी द्वारा बनाया जाना बतलाया जाता है ।

भोगभूमिकी रीतिके समाप्त होनेपर भगवानने विचार किया कि पूर्व और पश्चिम विदेहमें जो स्थिति वर्तमान है, प्रजा अब, उसीसे जीवित रह सकती है वहांपर जिस प्रकार षट्कर्मोंकी और वर्णाश्रम आदिकी स्थिति है, वैसी ही यहां होनी चाहिए । इन्हीं उपायों से इनकी आजीविका चल सकती है, अन्य कोई उपाय नहीं है । इसके बाद इन्द्रने भगवान् की इच्छाके अनुसार नगर, ग्राम, देश आदि बसाये और भगवानने प्रजाको छह कर्म सिखलाकर क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी स्थापनाकी । (देखो पर्व १६, श्लोक १४२–६० ।)

इससे मालूम होता है कि विदेहोंमें तीन ही वर्ण हैं । क्योंकि भगवानने युगके आदिमें पूर्व पश्चिम विदेहोंके अनुसार ही प्रबन्ध किया था, और प्रजाको तीन वर्णोंमें विभाजित किया था । यदि विदेहोंमें ब्राह्मण वर्ण भी होता तो भगवान् यहां भी उसे रखते । इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण वर्णकी स्थापना दुनियांसे निराली और बिलकुल गैरजरूरी बात थी । यदि ब्राह्मणवर्ण किसी कामका होता, तो विदेहमें वह भी अवश्य होता है । भरत महाराजके द्वारा इसकी स्थापना केवल धार्मिक आवश्यकताके लिए बतलाई जाती है, न कि किसी लौकिक सिद्धिके लिए, और विदेह क्षेत्रोंमें सर्वदा ही चौथा काल रहता है अतएव ऐसी कोई धार्मिक प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती जो विदेहोंमें न हो । इससे मानना पड़ेगा कि यदि भरतके द्वारा ब्राह्मणवर्णकी स्थापना होनेकी बात सत्य है तो उन्होंने चौथे कालकी रीतिको उल्लंघन करके व्यर्थ ही इसे बनाया, अथवा यह कहना होगा कि इस वर्ण की स्थापना चौथे कालकी बाबत ही नहीं हो सकती है, यह वर्ण पांचवें कालमें ही बना है । भरत महाराज के सिर इसके बनाने का दोष व्यर्थ ही मढ़ा जाता है ।

जिस समय भगवानने प्रजाको तीनों वर्णों के जुदे जुदे काम सिखलाए थे उस समय यदि ब्राह्मण वर्ण बनाने की जरूरत होती, तो कोई कारण नहीं है कि वे उन्हें न

बनाते । यदि कोई ऐसी ही बात होती जिस से बहुत दिन पीछे भरतके द्वारा ही उन का बनाया जाना उचित होता, तो वे भरत को इस बातकी आज्ञा देते कि अमुक समयमें अमुक रीतिसे ब्राह्मण वर्ण की स्थापना करना । यदि ऐसा होता तो १६ अनिष्ट स्वप्नोंके आने पर भरतजीको न तो किसी प्रकार की चिन्ता होती और न वे भगवान् के समक्षमें यह निवेदन ही करते कि आपके होते हुए भी मैंने यह कार्य मूर्खता वश कर डाला है और अब इस कार्यकी योग्यता या अयोग्यताकी चिन्तासे मेरा मन डांवांडोल हो रहा है । (पर्व ४१ श्लोक ३२-३३ ।) इससे मालूम होता है कि ब्राह्मण वर्गकी स्थापना ऐसा कार्य नहीं था जो होना ही चाहिये था-भरतजीने यह व्यर्थ ही अटकलपच्चू कर डाला था ।

जैनशास्त्रोंसे मालूम होता है कि यहां अनन्त बार चौथा काल आया है और अनन्त बार कर्मभूमिकी रचना हुई है । परन्तु मालूम होता है कि इससे यह पहले ब्राह्मण वर्णकी स्थापना कभी किसी भी कर्मभूमिकी रचनाके समय नहीं हुई । यदि ऐसा होता तो भरतमहाराजके पूछने पर भगवान् यही उत्तर देते कि इसमें घबड़ानेकी कोई बात नहीं है, क्योंकि ऐसा तो सदा ही होता आया है-चौथे कालमें ब्राह्मणवर्ण पहले भी होता रहा है, परन्तु उन्होंने ऐसा उत्तर न देकर यही कहा कि तुमने जो साधुसमान व्रती श्रावकोंका सत्कार किया है, सो इस समय तो अच्छा ही किया है, चौथे कालमें तो ये लोग धर्ममें स्थिर रहेंगे, परन्तु आगे इनसे बड़े बड़े अनर्थ होंगे । (देखो पर्व ४१ श्लोक ४३-५७ ।)

भरतजीने ब्राह्मणवर्णकी स्थापना इस लिये नहीं की कि प्रजाको उसकी आवश्यकता थी । यदि ऐसा होता तो स्थापना के प्रकरणमें यह बात अवश्य लिखी जाती । वहां तो इससे विपरीत यह लिखा है कि उन्होंने अपना सारा धन परोपकारमें लगाने के लिये यह कार्य किया था । (पर्व ३८, श्लोक ३-८ ।)

उपासकाध्ययनसूत्रमें भी-जो द्वादशांग वाणीका सातवां अंग है और जिसमें गृहस्थोंकी सारी क्रियाओंका वर्णन है-ब्राह्मणवर्णका जिकर नहीं मालूम होता । क्योंकि आदिपुराणके कथनानुसार ब्राह्मणवर्णकी स्थापना के समय भरतजी को इस उपासकाध्ययनका ज्ञान था । यदि इस अंगमें ब्राह्मणवर्ण का कथन होता तो भरत जी को भगवान्के समक्ष इस बातकी घबड़ाहट न होती कि ब्राह्मणवर्णकी स्थापना का कार्य मुझसे योग्य हुआ है या अयोग्य, और वे भगवान् से स्पष्ट शब्दों में कहते कि मैंने सातवें अंगके अनुसार ब्राह्मणवर्ण स्थापित किया है । उन्होंने तो केवल यही कहा है कि मैंने उपासकाध्ययनसूत्रके अनुसार चलने वाले 'श्रावकाचारचंचु' पुरुषों को ब्राह्मण बनाया है । (पर्व ४१ श्लोक ३० ।)

इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि न तो विदेहक्षेत्रमें ही ब्राह्मण वर्ण है-जहां सदा ही चौथा काल रहता है, न भरतक्षेत्रमें सदासे ब्राह्मणवर्णकी स्थापना होती आई है, न द्वादशांगवाणीमें ही इस वर्णका उल्लेख है, न भगवान् आदिनाथने इसे बनाया और न उनकी आज्ञाके अनुसार ही भरत ने इसकी स्थापना की। भरतने इसे स्वयं ही नटकलपच्चू, दूसरे शब्दोंमें इसके विरुद्ध बना डाला था ।

अन्तमें हम अपने पाठकों से इस लेख को फिरसे एकवार बांचनेकी प्रार्थना करते हैं और इतना और सूचित कर देना चाहते हैं कि हमने इस लेखमें आदिपुराण के उस कथन पर बहस नहीं की है जिसमें ब्राह्मणवर्ण की उत्पत्ति की विधि लिखी है। उस कथन पर तो इतनी अधिक शंकायें उत्पन्न होती हैं कि यदि उन सब पर विचार किया जाय तो इससे भी अधिक लिखना पड़े। परन्तु हमें आशा है कि अब हमें उन बातोंको लिखना न पड़ेगा। इस लेखको पढ़नेके बाद हमारे भाई स्वयं ही उन पर विचार कर लेंगे।